UNIVERSAL
LIBRARY
OU_186116
UNIVERSAL
LIBRARY

SMANIA UNIVERSITY LIBRARY

371.32
S53S

Accession No. G 11 2219

शास्त्री, सि०, प०श०, प०श०

साहित्य - सोपान

book should be returned on or before the date
d below.

समालोचनार्थ.

# साहित्य--सोपान

[ भाग-१ ]

●

संपादक :

वि० एस० एस० शास्त्री, 'साहित्यरत्न'

पि० विष्णुतीर्थ

●

प्रकाशक :

भाषा प्रचार महाविद्यालय, बंगलोर

प्रथम संस्करण
संवत् २००७

मूल्य :—
डेढ रुपये

Checked 1965

---

मुद्रक :

नारायणदास जाजू, मुख्य प्रबन्धक—श्रीकृष्ण प्रिंटिंग वर्क्स, वर्धा।

---

Checked 1969

# निवेदन

अहिन्दी भाषी प्रान्तों के विद्यार्थियों के लिए पाठ्य-पुस्तक के रूप में संकलित एक गद्य-संग्रह की कमी वर्षों से अनुभव की जा रही थी। 'भाषा-प्रचार महाविद्यालय', बंगलोर द्वारा प्रकाशित प्रस्तुत पुस्तक 'साहित्य-सोपान' इस अभाव की पूर्ति की दिशा में प्रथम प्रयत्न है।

प्रस्तुत पुस्तक में हिन्दी के प्रतिनिधि गद्य-लेखकों की विविध रचनाएँ संकलित हैं।

विद्यार्थियों के कुतूहल को बढ़ाने के लिए एक नाटकीय-दृश्य का भी समावेश किया गया है। आशा है इससे छात्रों की अभिरुचि हिन्दी के पठन-पाठन की ओर बढ़ेगी।

हिन्दी पाठ्य-पुस्तकों के प्रकाशन की दिशा में विद्यालय की ओर से किया गया यह प्रथम प्रयास है। इसी प्रकार कुछ और भी उच्चकोटि की गद्य तथा पद्य की पुस्तकें प्रकाशित करने की विद्यालय की योजना है। दो पुस्तकें 'कविता-कुञ्ज' (कविता-संग्रह) तथा 'हिन्दी-व्याकरण' (अँग्रेजी—कन्नड) शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली हैं।

स्थानीय प्रतिष्ठित धनी-मानी हिन्दी-प्रेमी श्री० जिनाभाई देवीदासजी ने पुस्तक-प्रकाशन के लिए २००) सहायता स्वरूप प्रदान कर, हिन्दी-प्रचार-कार्य में जो सहयोग दिया है उसके लिए विद्यालय चिरऋणी रहेगा।

पुस्तक की पाण्डुलिपि को शुद्ध एवं सुन्दर बनाने में श्री एस. जी. ललिता और श्री टी. एन. अलमेलुजी ने विशेष रूप से हाथ बँटाकर; एवं पुस्तक के मुद्रण तथा प्रकाशन का उत्तरदायित्व स्वयं ही ग्रहण करके मित्रवर श्रीहरिदत्त मिश्र एम. ए., 'साहित्यरत्न' और श्री हरिशंकर शर्मा 'साहित्यरत्न' (राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा) ने जो अनुपम सहयोग दिया है उसके लिए विद्यालय कृतज्ञ रहेगा।

हिन्दी के जिन विद्वान लेखकों की रचनाएँ इस संग्रह में संकलित हैं, उनको यह अकिंचन विद्यालय अपनी कुसुमाञ्जलि अर्पित करता है।

भाषा प्रचार महाविद्यालय,
बंगलोर
३०.४.१९५०

वि० एस० एस० शास्त्री
अध्यक्ष
हिन्दी-विभाग

# विषय-सूची


| | | | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| १. | एक देश | राजेन्द्र बाबू | १ |
| २. | भोज और सत्य | राजा शिवप्रसाद | ४ |
| ३. | उत्तम रचना | रामचन्द्र वर्मा | १४ |
| ४. | ईसा का अवसान | बेचन शर्मा 'उग्र' | १९ |
| ५. | हिन्दी गद्य का विकास | श्यामसुंदरदास | ३० |
| ६. | बाघ से भिड़न्त | श्रीराम शर्मा | ३८ |
| ७. | आत्मबल | रामचन्द्र शुक्ल | ४९ |
| ८. | बृटिश म्यूज़ियम | रामप्रसाद त्रिपाठी | ५६ |
| ९. | नमक का दारोगा | प्रेमचन्द | ६५ |
| १०. | कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर | लक्ष्मीधर वाजपेयी | ८० |

# भूमिका

विश्व की प्रायः प्रत्येक भाषा के इतिहास का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि प्रत्येक भाषा में साहित्य रचना पहले पद्य में हुई और बाद में गद्य में। हिन्दी साहित्य भी इस सर्वप्रचलित नियम का अपवाद नहीं है। हिन्दी पद्य का प्रारंभ कई सौ वर्ष पहले से हुआ, जब कि हिन्दी गद्य साहित्य आधुनिक युग की चीज़ है।

हिन्दी गद्य साहित्य किन-किन अवस्थाओं से होता हुआ अपना वर्तमान स्वरूप ग्रहण कर सका है इस पर विचार करना अनुपयुक्त न होगा।

हिन्दी पद्य साहित्य की भाँति हिन्दी गद्य का प्रारंभ भी 'व्रजभाषा' से ही हुआ। विक्रम की १४ वीं शताब्दी में गुरु गोरखनाथ और उनके शिष्यों द्वारा हठयोग तथा अन्य विषयों पर लिखी पुस्तकें ही हिन्दी के व्रजभाषा-गद्य की प्राचीनतम कृतियाँ कही जा सकती हैं।

इसके बाद लगभग ३०० वर्षों तक हिन्दी गद्य में प्रायः किसी उल्लेखनीय कृति का अभाव-सा ही रहा है। विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी में श्री विट्ठलनाथजी के पुत्र श्री गोसाईं गोकुलदास द्वारा लिखी 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' 'तथा दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' नामक दो वैष्णव मत की धार्मिक पुस्तकें विशेष रूप से व्रजभाषा-गद्य में अपना महत्त्व रखती हैं।

किन्तु किन्हीं कारणों से व्रजभाषा-गद्य साहित्य का विकास न हो सका। सम्भवतः इसका कारण यही हो कि उस युग में गद्य की विशेष आवश्यकता ही न रही हो।

प्राचीन काल की लिखी हुई खड़ी बोली गद्य में एक पुस्तक उपलब्ध है—अकबर के समय 'कवि गंग' द्वारा लिखी गई 'चन्द छन्द बरनन की

महिमा'। किन्तु इस पुस्तक में भी खड़ी बोली गद्य का प्रारंभिक रूप ही दृष्टिगोचर होता है।

खड़ी बोली के आधुनिक हिन्दी गद्य शैली की झलक हमें विक्रम की १९ वीं शताब्दी के निम्नलिखित चार लेखकों की कृतियों में मिलती है :—मुंशी सदासुखलाल, लल्लूलाल, सदल मिश्र तथा इंशा-अल्ला खाँ।

मुगल साम्राज्य के पतन के पश्चात् दिल्ली तथा आगरा के आसपास की जनता बहुसंख्या में उत्तरी-भारत तथा अन्य प्रदेशों में बिखर गई और अपने साथ-साथ खड़ी बोली को भी विरासत के रूप में लेती गई। अँग्रेजों के शासन काल में शासन व्यवस्था सुचारु रूप से चलाने के लिये अँग्रेज अधिकारियों को भारतीय जनता की एक सर्वप्रचलित भाषा की आवश्यकता प्रतीत हुई और उन्होंने 'खड़ी बोली' को ही सर्वप्रचलित भाषा मानकर, संवत् १८६० में कलकत्ता के 'फोर्ट विलियम कॉलेज' के तत्वावधान में लल्लूलाल तथा सदल मिश्र द्वारा क्रमशः 'प्रेमसागर' तथा 'नासिकेतोपाख्यान' नामक ग्रन्थों की रचना करवाई।

इसी काल में दो लेखकों ने स्वान्तः सुखाय रचनायें कीं। मुंशी सदासुखलाल का 'प्रेम-सागर' तथा इंशाअल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' नामक रचनायें खड़ी बोली गद्य की सुन्दर प्रारंभिक कृतियाँ हैं।

यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि खड़ी बोली के गद्य-साहित्य को जन्म देने का श्रेय इन्हीं उपर्युक्त चार महानुभावों को है किन्तु इन भाषा की भी अपनी-अपनी विशेषतायें हैं जिसके कारण भाषा का एक सुनिश्चित रूप स्थिर नहीं किया जा सकता।

इसी काल में धर्म-प्रचारकों द्वारा भी हिन्दी गद्य को विशेष प्रोत्साह प्राप्त हुआ। एक ओर तो ईसाई पादरियों ने धर्म-प्रचार के लिये इसे अपनाया और 'बाइबिल' का अनुवाद खड़ी बोली गद्य में कराया और दूसरी

ओर स्वामी दयानन्द के आर्यसमाज आन्दोलन ने भी इसे विशेष बल प्रदान किया। इसी समय ईसाई पादरियों ने मुद्रणालय भी स्थापित किए जिससे इसकी प्रगति तीव्र गति से हुई।

ऊपर कहा जा चुका है कि गद्य की भाषा का कोई स्वरूप अभी तक निश्चित नहीं हो पाया था इसी बीच राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद' तथा राजा लक्ष्मणसिंह ने साहित्यक्षेत्र में पदार्पण किया। राजा शिवप्रसाद ने अपनी रचनाओं में उर्दू शब्दों के प्रयोग द्वारा भाषा को 'आम-फ़हम' रूप देने का प्रयत्न किया जब कि राजा लक्ष्मणसिंह संस्कृतनिष्ठ भाषा के पक्षपाती थे। इस प्रकार हिन्दी गद्य साहित्य में दो प्रकार की शैलियों का प्रयोग होता रहा।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का हिन्दी साहित्य में पदार्पण एक उल्लेखनीय घटना है। वास्तव में आधुनिक हिन्दी गद्य के स्वरूप का सर्वप्रथम दर्शन हमें भारतेन्दुजी की ही रचनाओं में प्राप्त होता है। भारतेन्दुजी ने अपनी रचनाओं में मध्यम मार्ग का प्रतिपादन किया। न तो उन्होंने उर्दू-फ़ारसी के शब्दों के अनुचित प्रयोग द्वारा भाषा को विकृत करने का प्रयत्न किया और न संस्कृत शब्दों के बाहुल्य द्वारा उसे दुरूह बनाने का ही प्रयास किया। उन्होंने वस्तुतः मध्य-मार्ग अपनाकर एक सरल, सुबोध, प्रवाहपूर्ण भाषा को जन्म दिया।

भारतेन्दु कालके अन्य लेखकों में पं. बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बालमुकुन्द गुप्त का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस काल के इन समस्त लेखकों ने नाटक, निबंध तथा मासिक पत्र-पत्रिकाओं द्वारा हिन्दी गद्य साहित्य की विशेष अभिवृद्धि की तथा भाषा को एक सुनिश्चित स्वरूप प्रदान किया।

यद्यपि भारतेन्दु कालके लेखकों ने हिन्दी गद्य की प्रगति में अमूल्य सहयोग दिया किन्तु परिमाणवृद्धि के साथ गुणवृद्धि नहीं हो सकी थी।

व्याकरण सम्बन्धी अशुद्ध प्रयोग खूब प्रचलित थे। हिन्दी साहित्य-उपवन को एक ऐसे सुयोग्य माली की आवश्यकता थी जो अनावश्यक झाड़-झंखाड़ों को काट-छाँटकर उसे सुन्दर स्वरूप प्रदान कर सके। ऐसे समय में 'सरस्वती' मासिक पत्रिका के सम्पादक के रूप में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने साहित्य-जगत् में प्रवेश किया। द्विवेदीजी ने अपनी असाधारण प्रतिभा तथा अथक परिश्रम द्वारा स्वयं शुद्ध, प्राञ्जल, प्रौढ तथा परिष्कृत गद्य साहित्य की सृष्टि तो की ही, साथ ही तीव्र, निष्पक्ष समालोचना तथा आवश्यक संशोधन द्वारा उन्होंने नवीन लेखकों को भी जन्म दिया जिनके द्वारा हिन्दी गद्य का वर्तमान स्वरूप हमें उपलब्ध हो सका।

द्विवेदीजी के समय से ही हिन्दी गद्य सरिता बहुमुखी धाराओं मे प्रवाहित हो चली और साहित्य के सब अंगों की प्रगतिपूर्ण अभिवृद्धि हुई। उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध, समालोचना तथा आत्मकथा साहित्य में अनेकानेक उत्तम रचनायें लिखी गईं।

उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द तथा हिन्दी के अमर कलाकार बाबू जयशंकर प्रसाद ने उपन्यास, कहानी तथा नाटक के क्षेत्र में असाधारण रचनायें लिखकर हिन्दी साहित्य को अमर कर दिया। ये दोनों अमर साहित्यिक एक दूसरे के पूरक कहे जा सकते हैं। जहाँ एक ओर प्रेमचन्दजीने सर्वसाधारण जनता केलिए सरल, सुबोध, आदर्शमयी-कृतियों से हिन्दी साहित्य के भण्डार को भरा वहाँ अद्भुत कलाशिल्पी प्रसादजी ने उच्च कलात्मक साहित्य द्वारा हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि की है।

इधर कुछ वर्षों से उपन्यास क्षेत्र में कई सुन्दर कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं। श्री प्रेमचन्द्र तथा प्रसादजी के अतिरिक्त उपन्यासकारों में सर्वश्री भगवतीचरण वर्मा, वृन्दावनलाल वर्मा, यशपाल, चतुरसेन शास्त्री, जैनेन्द्र-कुमार आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी का कहानी-साहित्य अत्यन्त तीव्र गतिसे प्रगति कर रहा है। अनेकानेक सुन्दर कथा-पुस्तकों के अतिरिक्त कहानी के मासिक-पत्रों की बाढ़ सी आ गई है। इधर कुछ वर्षों से टैकनीक की दृष्टि से कई उत्तम कृतियों का भी प्रकाशन हुआ है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध कहानी लेखकों में सर्व श्री प्रेमचन्द्र, जयशंकर प्रसाद, सुदर्शन, जैनेन्द्र, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी आदि अग्रणी हैं।

यद्यपि हिन्दी के अपने स्वतंत्र रंगमंच का निर्माण अब तक नहीं हो सका है किन्तु फिर भी हिन्दी का नाटक साहित्य पर्याप्त समृद्ध कहा जा सकता है। इधर कुछ वर्षों से एकांकी नाटक साहित्य बहुत लोकप्रिय हो गया है। सुप्रसिद्ध नाट्यकारों में सर्वश्री जयशंकर प्रसाद, लक्ष्मीनारायण मिश्र, हरिकृष्ण प्रेमी, सेठ गोविन्ददास, उदयशंकर भट्ट तथा गोविन्दवल्लभ पन्त प्रसिद्ध हैं। एकांकी नाट्यकारों में सर्वश्री रामकुमार वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्कपंप, विष्णु प्रभाकर, आदि का नाम लिया जा सकता है।

हिन्दी समालोचना तथा निबन्ध साहित्य की प्रगति यद्यपि पर्याप्त विलम्ब से हुई किन्तु कुछ ही वर्षों मे इस अग की खूब उन्नति हुई है। इस क्षेत्र में सर्वश्री रामचन्द्र शुक्ल, श्यामसुंदरदास, हजारीप्रसाद द्विवेदी, शान्तिप्रिय द्विवेदी, बाबू गुलाबराय, नंददुलारे वाजपेयी, रामरतन भटनागर प्रभृति विद्वानों ने अत्यंत सुंदर साहित्य की सृष्टि की है।

यद्यपि हिन्दी में आत्मकथा साहित्य का अभाव-सा ही है किन्तु इधर बाबू राजेन्द्र प्रसाद, राहुल सांकृत्यायन, वियोगी हरि तथा इलाचन्द्र जोशी आदि विद्वानो ने आत्मकथा साहित्य को समृद्ध बनाने में सहयोग दिया है और आत्मकथा लिखने की परिपाटी सी चल पड़ी है। आशा है इस क्षेत्र में भी हिन्दी साहित्य पीछे न रहेगा।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दी का गद्य साहित्य आज सर्वतोमुखी उन्नति कर रहा है। प्रकांड-पाण्डित्य तथा प्रखर-प्रतिभा-

सम्पन्न हिन्दी कलाकारों के प्रयत्न से आज हिन्दी का गद्य साहित्य केवल भारतीय भाषाओं की ही नहीं बल्कि विश्व साहित्य की भी तुलना में समुन्नत कहा जा सकता है। अब तो हिन्दी स्वतंत्र भारत की राष्ट्रभाषा घोषित हो चुकी है अतः उसका भविष्य उज्वल है इसमें कोई सन्देह नहीं।

प्रस्तुत पुस्तक में हिन्दी गद्य के प्रतिनिधि लेखकों की कृतियों का संकलन किया गया है। विषय तथा भाषा-शैली की दृष्टि से भी लेखों का चुनाव उत्तम है। अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र के विद्यार्थियों में राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से यह सुन्दर संग्रह उपयोगी सिद्ध होगा। यही मेरी शुभ कामना है।

आनन्द विलास

हिन्दीनगर, वर्धा।

वैशाखी पूर्णिमा, सं. २००७

—कृपाल द्विवेदी

(बी० ए०, 'साहित्यरत्न')

# साहित्य-सोपान

## मध्यम श्रेणी—भाग १

## १. एक देश

लेखक—बाबू राजेंद्र प्रसाद

[ राजेंद्र बाबू का जन्म १८८४ ईसवी में उत्तर बिहार क सारन जिले के एक प्रतिष्ठित कायस्थ वंश में हुआ। बाबूजी सीधे एवं सरल स्वभाव के हैं। आपका हिंदी और अंग्रेजी पर असाधारण अधिकार है। आप हिंदी और हिंदी साहित्य के केवल प्रेमी ही नहीं बल्कि सेवक भी हैं। आपं परिष्कृत श्रद्धा, आत्म-समर्पण और सजग कर्तव्यनिष्ठा के प्रतीक हैं। आप भारतीय विधान परिषद् के अध्यक्ष रह चुके हैं और अब 'भारतीय रिपब्लिक' की अध्यक्ष पदवी पर विराजमान हैं।

आपकी कीर्ति केवल राजनीतिक क्षेत्र में ही नहीं, प्रत्युत साहित्य के क्षेत्र में भी अमर है। आपका **'खंडित भारत'** (*India Divided*) एक गवेषणापूर्ण ग्रंथ है। प्रस्तुत भाग इसी ग्रंथ में से चुना गया है। ]

**भा**रत एक विस्तृत देश है। उत्तर में हिमालय शृंखला[1] से लेकर दक्खिन में कटिबन्धरेखा[2] तक फैला हुआ है। इसलिये जलवायु की विभिन्नता तथा शारीरिक गठन में अन्तर होना स्वाभाविक है। इसके साथ ही साथ प्रायः चार हज़ार फुट लम्बा समुद्री किनारा है जो समुद्र से कटकर विषम हो गया है। इस देश में राजपूताना और सिन्ध के समान मरुदेश भी हैं और बंगाल तथा आसाम के समान हरे-भरे प्रान्त भी। आसाम के उत्तर-पूर्व भाग तथा पश्चिमी घाट के दक्षिण-पश्चिमी भाग के

---

१ श्रेणी, कतार। २ Equator, विषुवत्‌रेखा।

समान प्रदेश भी हैं, जहाँ अत्यधिक वर्षा होती है तथा राजपूताना, सिन्ध और आन्ध्र के कुछ हिस्से के समान प्रदेश भी हैं, जहाँ अति अल्प वर्षा होती है। इसी तरह ऐसे भी प्रान्त हैं जहाँ अत्यधिक सर्दी तथा गर्मी पड़ती है, जैसे पंजाब तथा सीमाप्रान्त और ऐसे भी प्रदेश हैं जहाँ न तो गर्मी पड़ती है और न सर्दी ही, जैसे दक्षिण के समुद्री किनारे के प्रदेश। लेकिन जलवायु तथा इन अनेक विभिन्नताओं का कोई भी असर[1] यहाँ के निवासियों के धार्मिक विश्वास पर नहीं पड़ा है और न इससे किसी तरहका भेद-भाव ही पैदा हुआ है।

जलवायु तथा इस तरह की अन्य विभिन्नताओं का असर विभिन्न प्रान्तों के निवासियों की पोशाक, गृह-निर्माण, रीति-रिवाज तथा रहन-सहन पर अवश्य पड़ा है। इस तरह के भेदभाव के रहते हुए भी भारत अखण्ड है और प्रकृति ने इसे स्वाभाविक प्रतिबन्धों—जैसे ऊँचे-ऊँचे पहाड़ और समुद्र—द्वारा अन्य देशों से अलग रखना ही उचित समझा है। प्रत्येक आक्रमणकारी विजेता या सम्राट् ने—चाहे वह हिन्दू शासनकाल या मुसलमान शासनकाल में हुआ हो—इस भूमि-भाग के प्रत्येक प्रान्तपर अपना शासन फैलाने का यत्न किया है। प्रत्येक शासक ने इस बात का यत्न किया कि यदि शासन के अन्दर नहीं तो प्रभुत्व के आधीन तो यह समूचा[2] देश अवश्य आ जाय। उत्तर-पश्चिमी सीमा के एक कोने में सदा ऐसा भूमिभाग रहा है, जो उस युग में कभी भी किसी के अधीन नहीं रहा, कुछ काल के लिये किसी भारतीय अथवा विदेशी का शासन उसपर भले ही हो जाता रहा हो। भारत को अपने अधीन करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने भी उसी पुरानी नीति को अपनाया। आज के प्रान्तों के समान उस युग में छोटे-छोटे राज्य थे जो आपस में लड़ा करते थे। लेकिन किसी भी शासक, राजा या नवाब

१ (अरबी शब्द) प्रभाव।
२ सारा।

ने कभी यह कल्पना नहीं की कि वह इस देश का निवासी नहीं है अथवा किसी भी प्रकार वह विदेशी है, या चीन, बर्मा, अरब अथवा तुर्किस्तान का रहनेवाला है। सन्ध्या-सरीखे नित्यकर्म के एक संकल्प के लिए जिस मंत्र का प्रतिदिन पाठ किया जाता है उसमें अखण्ड भारत की ही पूर्ण कल्पना है और जलपात्र में सिन्धु, गंगा तथा कावेरी आदि नदियों का आवाहन किया जाता है। यह बात उसी समय तक सीमित नहीं थी जब इस देश पर हिन्दू चक्रवर्ती-सम्राटों का शासन था बल्कि उस युग में भी, जब यहाँ मुसलमान बादशाह राज्य करते थे अथवा जब दिल्ली के तख्तपर मुसलमानों का राज्य था और भिन्न-भिन्न प्रदेशों का राज्य छोटे-छोटे स्वतन्त्र राजाओं के हाथ में था। आज जब समूचे भारत पर ब्रिटिश झण्डा फहरा रहा है तब भी उसी मन्त्र का उच्चारण होता है। हिन्दुओं के चार प्रसिद्ध तीर्थस्थान हैं, जिन्हें धाम कहते हैं। इन चारों धामों की यात्रा करना प्रत्येक हिन्दू अपना सबसे बड़ा धार्मिक कृत्य मानता है। ये धाम भारत के दक्षिणी-बिन्दु[1] पर रामेश्वर, उत्तर में हिमालय की १५००० फुट ऊँची चोटी पर बदरिकाश्रम, पूर्वी किनारे पर उड़ीसा में जगन्नाथ और पश्चिमी किनारे पर काठियावाड़ में द्वारका हैं। यह किसी भी प्रकार अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि चाहे देश पर किसी जाति का शासन क्यों न रहा हो, भारत कितने भी छोटे-मोटे राज्यों में क्यों न विभक्त रहा हो, लेकिन यहाँ के हिन्दुओं ने कभी इसकी खण्डता की कल्पना तक नहीं की और मुसलमान तथा ब्रिटिश शासकों ने भी हिन्दुओं की उसी परम्परा को पूर्णतः स्वीकार किया है।

## अभ्यास

१. इस लेख के आधार पर अखंड-भारत की रूपरेखा का वर्णन करो।

२. वाक्यों में प्रयोग करो—आवाहन, परंपरा, बल्कि, कटिबंध-रेखा।

१ अंतिम स्थान।

# २. भोज और सत्य

लेखक—राजा शिवप्रसाद

[राजा शिवप्रसाद काशी के निवासी थे। आपको सरकार की ओर से 'राजा' और 'सितारे हिंद' की उपाधियाँ मिली थीं। आप हिंदी के बड़े सेवक थे। आपने विभिन्न विषयों पर लगभग ३५ पुस्तकें लिखीं। राजा साहब ने हिंदुस्तानी (खिचड़ी हिंदी) और शुद्ध हिंदी दोनों में पुस्तकें लिखी हैं। हिंदी का जो वर्तमान रूप है वह बहुत कुछ आप जैसों के प्रयत्न से ही प्राप्त हुआ है। हिंदी-हिंदुस्तानी के अतिरिक्त आप उर्दू के भी आदर्श लेखक, तथा फ़ारसी और अंग्रेज़ी के भी विद्वान थे।

भोज धार नगर के प्रसिद्ध विद्वान राजा थे। बड़े धर्मात्मा, उदार और पराक्रमी थे। उनके विषय में बहुत-सी कथाएँ प्रसिद्ध हैं, उनमें से यह भी एक कहानी है—एक दिन राजा भोज ने एक सपना देखा कि उसके पास एक दैवी पुरुष आया। बाद में जो हुआ इस कहानी में वर्णित है।]

राजा उसे देखते ही काँप उठा और लड़खड़ाती[1]-सी ज़बान से बोला कि "हे महाराज! आप कौन हैं? और मेरे पास किस प्रयोजन से आये हैं?" उस दैवी पुरुष ने बादल की गरज के समान गंभीर उत्तर दिया कि "मैं सत्य हूँ। मैं अंधों की आँखें खोलता हूँ। मैं उनके आगे से धोखे की टट्टी[2] हटाता हूँ। मैं मृगतृष्णा[3] के भटके[4] हुओं का भ्रम मिटाता हूँ और सपने के भूले हुओं को नींद से जगाता हूँ। हे भोज! यदि कुछ हिम्मत रखता है तो आ और हमारे तेज के प्रभाव से मनुष्यों के मन के मंदिरों का भेद ले। इस समय तो हम तेरे ही मन को जाँच रहे हैं।"

---

१ विचलित, डगमगाती हुई। २ धोखे की टट्टी (मुहा०) भ्रम में डालनेवाली वस्तु। ३ मरीचिका (Mirage)। ४ रास्ता भूले हुए।

राजा के जी पर एक अजब[1] दहशत[2]-सी छा गई। नीची निगाह करके गर्दन खुजाने[3] लगा। सत्य बोला —"भोज ! तू डरता है ? तुझे अपने मन का हाल जानने में भी भय लगता है।" भोज ने कहा कि "नहीं, इस बात से तो नहीं डरता, क्योंकि जिसने अपनी तई[4] नहीं जाना उसने फिर जाना ही क्या ? सिवाय इनके; मैं तो आप ही चाहता हूँ कि कोई मेरे मन की थाह[5] लेवे और अच्छी तरह से जाँचे। मोर व्रत और उपवासों के मैंने अपना फूल-सा शरीर काँटा बनाया[6]। ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा देते-देते सारा खज़ाना खाली कर डाला। कोई तीर्थ बाकी न रक्खा। कोई नदी या तालाब नहाने से न छोड़ा। ऐसा कोई आदमी नहीं है जिसकी निगाह में मैं पवित्र पुण्यात्मा न ठहरूँ।"

सत्य बोला—"ठीक। पर, भोज ! यह तो बतला कि तू ईश्वर की निगाह में क्या है। **हवा में बिना धूप तृसरेणु[7] कभी दिखलाई देते हैं ? पर सूरज की किरण पड़ते ही कैसे अनगिनत चमकने लग जाते हैं ? क्या कपड़े के छाने हुए मैले पानी में किसी को कीड़े मालूम पड़ते हैं ? पर जब खुर्दबीन[8] शीशे को लगाकर देखो तो एक एक बूँद में हजारों जीव सूझने लग जाते हैं।** बस, जो तू उस बात को जानने से, जिसे अवश्य जानना चाहिए, डरता नहीं तो आ, मेरे साथ आ, मैं तेरी आँखें खोलूँगा।"

---

१ विचित्र, अद्भुत। २ भय, डर। ३ रगड़ने। ४ को, प्रति (इसका प्रयोग अब नहीं होता)। ५ गहराई। ६ काँटा बनाना—कृश बनाना। ७ दृष्टि। ८ धूलिकण जो वायु में मिले रहते हैं। ९ सूक्ष्मवीक्षण यंत्र (Telescope)।

निदान[1], सत्य यह कहके राजा को मंदिर के उस बड़े ऊँचे दरवाज़े पर चढ़ा ले गया कि जहाँ से सारा बाग़ दिखलाई देता था और फिर वह उससे यों कहने लगा कि "भोज ! मैं अभी तेरे पाप कर्मों की कुछ भी चर्चा नहीं करता क्यों कि तूने अपने तईं निरा[2] निष्पाप समझ रक्खा है। पर यह तो बतला कि तूने पुण्य-कर्म कौन कौन-से किए हैं, जिनसे सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर संतुष्ट होगा।"

राजा यह सुनकर अत्यंत प्रसन्न हुआ। यह तो मानों उसके मन की बात थी। पुण्य-कर्म के नाम ने उसके चित्त को कमल-सा खिला[3] दिया। उसे निश्चय था कि 'पाप तो मैंने चाहे किया हो, चाहे न किया हो। पर पुण्य मैंने इतना किया है कि भारी से भारी पाप भी उसके पासंग[4] में न ठहरेगा।

राजा को वहाँ उस समय सपने में तीन पेड़ बड़े ऊँचे ऊँचे अपनी आँख के सामने दिखाई दिए। फलों से लदे हुए कि मारे[5] बोझ के उनकी टहनियाँ[6] धरती पर झुक गयी थीं। राजा उन्हें देखते ही हरा हो गया[7] और बोला कि "सत्य ! यह ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया अर्थात् ईश्वर और मनुष्य दोनों की प्रीति के पेड़ हैं। देखो फलों के बोझ से धरती पर नये[8] जाते हैं। ये तीनों मेरे ही लगाये हैं।

"पहले में तो वह सब लाल लाल फल मेरे दान से लगे हैं और दूसरे में वह पीले पीले मेरे न्याय से और तीसरे में यह सब फल मेरे तप

---

१ अंत में, आख़िर, अंततोगत्वा। २ बिल्कुल। ३ विकसित कर, प्रसन्न कर। ४ पासंग में न ठहरेगा = (मुहाविरा) = मुक़ाबिले में न आएगा। ५ कारण से। ६ पतली शाखाएँ। ७ हरा हो जाना —(मुहा०) = प्रसन्न हो जाना। ८ झुके।

का प्रभाव दिखलाते हैं।" मानों उस समय चारों ओर से यह ध्वनि राजा के कानों में चली आती थी कि धन्य हो महाराज! धन्य हो! आज तुम-सा पुण्यात्मा दूसरा कोई नहीं, साक्षात् धर्म के अवतार हो, इस लोक में भी तुमने बड़ा पद पाया है और उस लोक में भी तुम्हें इससे अधिक मिलेगा। तुम मनुष्य और ईश्वर दोनों की आँखों में निर्दोष, निष्पाप हो। सूर्य के मंडल में लोग कलंक बतलाते हैं। पर तुममें एक छींटा भी नहीं लगाते।

सत्य बोला कि "भोज! मैं उन पेड़ों के पास से आया था जिन्हें तू ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया के बतलाता है। तब तो उनमें फल-फूल कुछ भी नहीं था। निरे ठूँठ[1] से खड़े थे। यह लाल, पीले और सफ़ेद फल कहाँ से आ गये! यह सच-मुच उन पेड़ों में फल लगे हैं, या तुझे फुसलाने और खुश करने को किसी ने उसकी टहनियों से लटका दिये हैं। चल, उन पेड़ों के पास चलकर देखें तो सही।

"मेरी समझ में तो यह लाल-लाल फल, जिन्हें तू अपने दान के प्रभाव से लगे बतलाता है, यश और कीर्ति फैलाने की चाह अर्थात् प्रशंसा पाने की इच्छा ने इस पेड़ में लगाये हैं।" निदान, ज्यों ही सत्य ने उस पेड़ के छूने को हाथ बढ़ाया, राजा सपने में क्या देखता है, कि वह सारे फल जैसे आसमान से तारे गिरते हैं एक आन की आन में[2] धरती पर गिर पड़े। धरती सारी लाल हो गयी। पेड़ों पर सिवाय पत्तों के और कुछ न रहा।

सत्य ने कहा—"राजा! जैसे कोई किसी चीज़ को मोम से चिपकाता[3] है उसी तरह तूने अपने भुलाने को प्रशंसा पाने की इच्छा से ये फल उस पेड़ पर लगा लिए थे।"

---

१ शाखा-पत्रहीन वृक्ष। २ आन की आन में (मुहा.) = अति शीघ्र। ३ लिपटाता, लगाता।

सत्य के तेज से वह मोम गल[1] गया। पेड़ ठूँठ का ठूँठ रह गया। "जो कुछ तूने दिया और किया सब दुनिया के दिखलाने और मनुष्यों से प्रशंसा पाने के लिए। केवल ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया से तो कुछ भी नहीं दिया। यदि कुछ दिया हो या किया हो तो तू ही क्यों नहीं बतलाता? मूर्ख! इसी के भरोसे पर तू फूला हुआ[2] स्वर्ग में जाने को तैयार हुआ था!!"—सत्य ने कहा।

भोज ने एक ठंडी साँस ली[3] उसने तो औरों को भूला हुआ समझा था पर वह सबसे अधिक भूला हुआ निकला। सत्य ने उस पेड़ की तरफ़ हाथ बढ़ाया जो सोने की तरह चमकते पीले पीले फलों से लदा हुआ था। सत्य का हाथ पहुँचते ही इसका भी वही हाल[4] हो गया जो पहले का हुआ था। सत्य बोला कि "राजा! पेड़ में ये फल तूने अपने भुलाने को स्वार्थ सिद्ध करने की इच्छा से लगा लिए थे। कहनेवाले ने ठीक कहा कि मनुष्य मनुष्य के कर्मों से उसके मन की भावना का विचार करता है और ईश्वर मनुष्य के मन की भावना के अनुसार उसके कर्मों का हिसाब लेता है।

"तू अच्छी तरह जानता है कि यही न्याय तेरे राज्य की जड़ है। जो न्याय न करे तो फिर यह राज्य तेरे हाथ में क्योंकर रह सके! जिस राज्य में न्याय नहीं वह तो बेनींव[5] का घर है। बुढ़िया के दाँतों की तरह हिलता है; अब गिरा, अब गिरा। मूर्ख! तू ही क्यों नहीं बतलाता कि यह तेरा न्याय स्वार्थ सिद्ध करने और सांसारिक सुख पाने की इच्छा से है अथवा ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया से?"

---

१ पानी हो गया, द्रवित हो गया। २ आनंदित, खुश। ३ सोच-विचार में रहना। ४ स्थिति, दशा। ५ बिना नींव के, निराश्रय।

भोज की पेशानी[1] पर पसीना[2] हो आया। आँखें नीची कर लीं! जवाब कुछ न बन पड़ा। तीसरे पेड़ की पारी[3] आई। सत्य का हाथ लगते ही उसकी भी वही हालत हुई। राजा अत्यंत लज्जित हुआ। सत्य ने कहा कि "मूर्ख! यह तेरे तप के फल कदापि नहीं, इनको[4] तो इस पेड़ पर तेरे अहंकार ने लगा रक्खा था। वह कौन-सा व्रत या तीर्थ-यात्रा है जो तूने निरहंकार केवल ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया से किया हो। तूने यह तप इसी वास्ते किया कि जिसमें अपने तईं औरों से अच्छा और बढ़के[5] विचारे। ऐसे ही तप पर, गोबर-गनेश[6]! तू स्वर्ग मिलने की उम्मेद[7] रखता है! पर यह तो बतला कि मंदिर की उन मुँडेरों[8] पर वे जानवर से क्या दिखलाई देते हैं। कैसे सुंदर और प्यारे मालूम होते हैं! पर[10] तो उनके पन्ने[11] के हैं और गर्दन फ़ीरोज़[12] की। दुम[13] में सारे किस्म[14] के जवाहिर जड़ दिये हैं।"

राजा के जी में घमंड की चिड़िया ने फिर फुरफुरी[15] की, मानों बुझते हुए दिए की तरह जगमगा उठा। जल्दी से जवाब दिया कि "सत्य! यह जो कुछ तू मंदिर की मुंडेरों पर देखता है मेरे संध्या-वंदन का प्रभाव

---

१ (फ़ारसी शब्द) माथा। ललाट २ स्वेद, श्रमबिंदु। ३ बारी। ४ (संस्कृत) कभी। ५ लिए, वास्ते (इस शब्द का प्रयोग केवल पद्य में होता है) ६ बढ़कर, आगे चलकर। ७ मूर्ख, बेवकूफ़ (व्यंग्यार्थ) ८ उम्मीद, आशा, भरोसा। ९ मुँडेर, दीवार का छत पर का उठा हुआ भाग (Parapet wall) १० पंख, डैना (wing of bird) ११ मरकत मणि। १२ (फ़ारसी) एक बहुमूल्य मणि जिसका रंग हरापन लिए नीला होता है। १३ पूँछ। १४ जाति, तरह। १५ पंख फड़फड़ाने की ध्वनि। फुरफुरी ली=उड़ गयी, जाग उठी

है। मैंने रातों जाग-जाग कर और माथा रगड़ते-रगड़ते इस मंदिर की देहली[1] को घिसकर ईश्वर की स्तुति-वंदना और विनती-प्रार्थना की है। वही अब चिड़ियों की तरह पंख फैलाकर आकाश को जाती है, मानों ईश्वर के सामने पहुँचकर अब मुझे स्वर्ग का राजा बनाती है।"

सत्य ने कहा कि "राजा! दीन-बंधु करुणासागर श्रीजगन्नाथ जगदीश्वर अपने भक्तों की विनती सदा सुनता रहता है और जो मनुष्य शुद्ध-हृदय और निष्कपट होकर नम्रता और श्रद्धा के साथ अपने दुष्कर्मों का पश्चात्ताप अथवा उनके क्षमा होने का टुक[2] भी निवेदन करता है वह उसका निवेदन उसी दम[3] सूर्य-चाँद को वेधकर[4] पार हो जाता है। फिर क्या कारण कि यह सब अब तक मंदिर की मुँडेर ही पर बैठे रहे। आ चल, देखें तो सही[5] हम लोगों के पास जाने पर आकाश को उड़ जाते हैं या उसी जगह पर परकटे[6] कबूतरों की तरह फड़फड़ाया करते हैं।"

भोज डरा, लेकिन सत्य का साथ न छोड़ा। जब मुँडेर पर पहुँचा तो क्या देखता है कि वे सारे जानवर, जो दूर से ऐसे दिखलाई देते थे, मरे हुए पड़े हैं, पंख नुचे-खुचे[7] और बहुतेरे[8] बिलकुल सड़[9] हुए, यहाँ तक कि मारे बदबू[10] के राजा का सिर भिन्ना उठा[11]। दो एक ने, जिन में कुछ दम बाकी था, जो उड़ने का इरादा भी किया तो उनका पंख पारे[12] की तरह भारी हो गया और उन्हें उसी ठौर[13] दबा रक्खा। तड़फ़ा[14] जरूर किये पर उड़ने ज़रा भी न दिया।

---

१ दीवार की चौखट की नीचे की लकड़ी (कन्नड 'होसिलु') २ थोड़ा, ज़रा। ३ उसी क्षण। ४ छेदकर, भेदकर ५ ठीक। ६ छिन्न-पक्ष, जिनके पर या पंख कटे हों। ७ उखाड़े और निकाले हुए, अस्तव्यस्त ८ अनेक ९ दुर्गंध युक्त (rotten) १० दुर्गंध। ११ भिन्ना उठा=चकरा गया। १२ पारद-रस (mercury) १३ जगह, स्थान। १४ तड़पना, छटपटाना।

सत्य बोला, "भोज ! बस, यही तेरे पुण्य-कर्म हैं, इन्हीं स्तुति-वंदना और विनती-प्रार्थना के भरोसे पर तू स्वर्ग में जाना चाहता है ! सूरत[1] तो इनकी बहुत अच्छी है। पर जान[2] बिलकुल नहीं। तूने जो कुछ किया केवल लोगों को दिखलाने को, जी से कुछ भी नहीं। जो तूने एक बार भी जी से पुकारा होता कि 'दीनबंधु दीनानाथ दीनहितकारी ! मुझ पापी, महा अपराधी, डूबते हुए को बचा और कृपा-दृष्टि कर', तो वह तेरी पुकार तीर की तरह तारों से पार पहुँची होती।"

राजा ने सिर नीचा कर लिया, उत्तर कुछ न बन आया।

## अभ्यास

१ निम्न-लिखित शब्दों के पर्यायवाची शब्द लिखो—तह, पासंग, धरती, निरा, टुक, परकट।

२. इस पाठ की विशेषताओं को सोदाहरण बताओ।

३. इस कहानी से क्या उपदेश मिलता है ?

४. अर्थ लिखकर वाक्यों में प्रयोग करो—ठंडी साँस लेना, बे-नींव का घर, आन की आन में, पासंग में न ठहरना, खुर्दबीन, हरा हो जाना, फूला हुआ, फुरफुरी ली,

५. ससंदर्भ भावार्थ लिखो—(अ) यह तो बतला कि तू..... लग जाते हैं (पृ. ५, पंक्ति ११-१६) (आ) मूर्ख यह तेरे तप के फल..... .....उम्मेद रखता है (पृ० ९ पंक्ति ४-९)

---

१ (फ़ारसी) रूप, आकृति। २ (फ़ारसी) प्राण

# ३. उत्तम रचना

## लेखक—बाबू रामचंद्र वर्मा

[बाबू रामचंद्रजी वर्मा का जन्म खत्री कुल में वि. सं. १९४६ में हुआ था। अब आप काशी में रहते हैं। आप 'हिंदी कसरी', 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' और 'लेखमाला' इत्यादि के संपादक रह चुके हैं। अब तक इनके रचे, अनुवादित तथा संपादित १०० के लगभग ग्रंथ हैं। आप सिद्धहस्त अनुवादक भी हैं। अंग्रेजी, संस्कृत, फ़ारसी, बंगला, मराठी, गुजराती आदि अनेक भाषाएं जानते हैं। हिन्दी भाषा को सुघटित और सुव्यवस्थित बनाने में आपका बड़ा हाथ है। इनकी 'अच्छी हिंदी' इसी पवित्र कार्य में उद्यक्त एक अमूल्य कृति है। इसीमेंसे प्रस्तुत भाग लिया गया है। इसमें लेखक ने 'उत्तम रचना' के सैद्धांतिक लक्षणों का विशद वर्णन किया है और इस पर भी ज़ोर दिया है कि रचना कौशल-सहज में प्राप्त नहीं होता, वह सतताभ्यास एवं बहुत परिश्रम से अर्जित किया जाता है।]

**रचना का उद्देश्य**

साहित्य-रचना का मुख्य उद्देश्य होता है—अपने भाव दूसरों पर प्रकट करना। अतः वही रचना अच्छी मानी जाती है जो लेखक के मन के भाव पाठकों पर भली भाँति[1] प्रकट कर सके। यदि रचना-प्रणाली[2] ठीक न होगी तो पाठक भ्रम में पड़ जायँगे। वे कुछ-का-कुछ[3] अर्थ कर बैठेंगे या कुछ भी न समझ सकेंगे। वास्तव में[4] लेखन भी कला है, और जो लोग अच्छे लेखक बनना चाहते हों, उन्हें इस कला का नियमित रूप से ज्ञान प्राप्त करना

---

१ **भली भाँति** = अच्छी तरह २ लिखने का क्रम, ढंग ३ **कुछ का कुछ** (मुहा) = अन्यथा, और का और ४ सचमुच, यथार्थतः

और परिश्रमपूर्वक इसका अभ्यास करना चाहिये। यहाँ रचना के कुछ ऐसे सिद्धांत बतलाये जाते हैं, जिनका ध्यान रखने से लेखक अपने भाव और विचार सफलतापूर्वक दूसरों पर प्रकट कर सकते हैं।

लेखों या रचनाओं में पहली और मुख्य चीज़ है—**विचार या भाव**। अतः हम जो कुछ लिखना चाहते हों, उससे सम्बन्ध रखनेवाले सब विचार या भाव स्वयं हमारे मन में स्पष्ट होने चाहिए। यदि हम स्वयं कोई बात अच्छी तरह न समझेंगे तो दूसरों को कैसे और क्या समझा सकेंगे! यदि मूल ही अस्पष्ट हो तो उसकी शाखा-प्रशाखाएँ[1] कब स्पष्ट हो सकेंगी! और यदि कहा जाय कि मूल तो सदा अस्पष्ट ही रहता है, तो भी रचना का उद्देश्य तो उसे स्पष्ट करना ही होता है। अतः रचना का पहला सिद्धांत है—विचारों का अपने मन में ठीक और स्पष्ट बोध[2]। एक बार अँगरेजी के किसी बहुत प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित लेखक से किसी ने पूछा था—'उत्तम साहित्यिक रचना प्रस्तुत करने[3] का रहस्य (या मूल मंत्र) क्या है? उसने उत्तर दिया—'किसी विषय पर अच्छी तरह और स्पष्ट विचार करने पर ही उत्तम साहित्यिक रचना प्रस्तुत होती है। इसके सिवा इसका और कोई रहस्य हो ही नहीं सकता।' अतः जो लोग साहित्यिक क्षेत्र में यशस्वी होना चाहते हों, उन्हें **पहले अपने लिए कोई उपयुक्त विषय चुनना चाहिए; और** तब उस पर अच्छी तरह विचार करके अपनी मानस[4] दृष्टि के सामने उसका स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करना चाहिए। साहित्यिक क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने का यही गुर[5] है। यदि हम कोई विषय स्वयं अच्छी तरह न समझते हों तो उसे दूसरों पर प्रकट करने का हमें कोई अधिकार नहीं है।

---

१ प्रशाखा = शाखा की शाखा। २ ज्ञान। ३ प्रस्तुत करना = तैयार करके सामने रखना। ४ मन की। ५ मूल-मंत्र।

जो विषय हमारे मानस-क्षेत्र के जितना ही समीप होगा और जिस पर हम सबसे अधिक विचार करते रहेंगे, उससे हमारा उतना ही घनिष्ठ[1] सम्बन्ध होगा; और उसी पर हम कलम चलाने के अधिकारी होंगे। अतः लिखने से पहले हमें अपने विवेच्य विषय[2] की **सब बातें भली भाँति हृदयंगम[3] करनी चाहिएँ**। जहाँ तक हो सके, उससे सम्बद्ध अधिक से अधिक सामग्री हमें एकत्र[4] करनी चाहिए; और उसपर **यथेष्ट मनन तथा विचार करना चाहिए**। जिस विषय पर हमारा सच्चा और वास्तविक[5] अनुराग[6] न होगा, वह विषय ठीक तरह से और उपयुक्त रूप में लिख सकना भी हमारे लिए बहुत ही कठिन होगा—वह हमारी शक्ति और अधिकार के बाहर होगा। और जिस विषय के स्पष्ट तथा उपयुक्त विचारों की हममें अधिकता होगी, उसीका हम सुचारु रूप से प्रतिपादन और विवेचन कर सकेंगे। किसी विषय का मनन और अध्ययन करके ही उसपर लेखनी उठानी चाहिए। यदि आपमें सामर्थ्य हो तो आप अनेक विषयों का साथ-साथ अध्ययन कर सकते हैं। परन्तु लिखना उसी विषय पर चाहिए, जिसका आपके मन में भलि-भाँति परिपाक[7] हो चुका हो। पहले हमें अपने मन का भांडार भरना होगा, तभी हम उस भांडार से दूसरों को लाभ पहुँचा सकेंगे। संसार में स्थायी[8] और उच्च कोटि का जितना साहित्य है, वह सब इसी प्रकार के परिपूर्ण भांडारों से निकला है।

**लिखने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त समय** वही होता है, जब मन सब प्रकार की चिन्ताओं और विकलताओं[9] से मुक्त तथा सब प्रकार

---

१ गहरा, अधिक। २ लेखका का विषय ३ अच्छी तरह समझमें आना ४ इकट्ठी ५ यथार्थ, ठीक ६ प्रेम ७ प्रौढ़ता, पूर्णता ८ बहुत दिन रहनेवाला ९ बेचैनियों।

से निश्चिन्त हो। प्रातःकाल प्रायः शरीर और मन दोनों उद्वेगों और व्यग्रताओं[1] से बहुत कुछ रहित तथा स्वस्थ और कर्मशील[2] होते हैं। अधिकांश बड़े-बड़े लेखक ऐसे ही हुये हैं जो बहुत सवेरे उठते थे और दैनिक कृत्यों से निवृत्त[3] होकर साहित्य-सेवा में लग जाते थे। कुछ ऐसे प्रतिभा-सम्पन्न लेखक भी अवश्य होते हैं जो जब चाहते हैं तभी लिखने बैठ जाते और खूब लिखते हैं। पर ऐसे लोग अपवादरूप में ही समझे जाने चाहिए। साधारण लोगों के लिए **उपर्युक्त समय प्रायः सवेरे का ही होता है**। इस सम्बन्ध में **दूसरा सिद्धान्त यह है** कि जिस समय किसी विषय में चित्त लीन हो जाता है, वही उसपर लिखने का उत्तम समय होता है। लेखक के लिए **तल्लीनता आवश्यक है**। कोई भावना जिस समय उत्तेजित होती है, उस समय उससे सम्बद्ध विषय पर जो कुछ लिखा जाता है, वह तर्क की दृष्टि से भले ही कुछ निम्न कोटि का हो, पर उसमें हृदय-ग्राहिता[4] आ ही जाती है।

**रचना का कौशल सहज में प्राप्त नहीं होता**। उत्तम साहित्यिक रचना करने के लिए आवश्यक गुण और शक्ति बहुत दिनों में और बहुत परिश्रम से अर्जित की जाती है। बहुत से लोगों को तो उत्तम और स्थायी रचना प्रस्तुत करने के लिए बरसों[5] परिश्रम करना और अपने जीवन का बहुत बड़ा अंश लगाना पड़ा है; यहाँ तक कि बहुतों को इसके लिए अपने

*रचना का कौशल*

---

१ घबराहट, व्याकुलता २ काम करने के लिए अनुकूल (Inclined to work) ३ मुक्त, उन्मुक्त ४ आसानी से ५ अनेक वर्षों का.

स्वास्थ्य से भी हाथ धोना[1] पड़ा है। बहुत-सा समय लगाने और बहुत अधिक परिश्रम करने के बाद भी लोगों को अपनी रचनाओं में बहुत कुछ संशोधन और सुधार की आवश्यकता जान पड़ी है। वे समझते हैं कि जब हमारी कृति स्वयं हमारा सन्तोष न कर सकी, तब वह दूसरों को कैसे सन्तुष्ट और प्रसन्न कर सकेगी! और यह है भी अच्छी कसौटी[2]।

**लेखक का काम कुछ अंशों में मधु-मक्खियों के काम से मिलता-जुलता है।** मधु-मक्खियाँ मकरन्द संग्रह करने के लिए कोसों के चक्कर लगाती और अच्छे-अच्छे फूलों पर बैठकर उनके रस लेती हैं। तभी तो उनके मधु में संसार की सर्वश्रेष्ठ मधुरता रहती है! यदि आप अच्छे लेखक बनना चाहते हों तो आपको भी यही वृत्ति धारण करनी चाहिए। **अच्छे-अच्छे ग्रन्थों का खूब अध्ययन कीजिए और उनकी बातों पर मनन कीजिए।** फिर आपकी रचनाओं में भी मधु का-सा माधुर्य आने लगेगा। कोई अच्छी उक्ति, कोई अच्छा विचार, भले ही दूसरे से ग्रहण किया गया हो, पर यदि यथेष्ट मनन करके आप उसे अपनी रचना में स्थान देंगे तो वह आपका ही हो जायगा। मनन-पूर्वक लिखी हुई चीज़ के सम्बंध में जल्दी किसी को यह कहने का साहस ही न होगा कि यह अमुक[3] स्थान से ली गई है, या उच्छिष्ट[4] है। जो बात आप अच्छी तरह आत्मसात् कर लेंगे,[5] वह फिर आपकी ही हो जायगी।

आप नित्य बहुत-सी घटनाएँ देखते हैं, बहुत से लोगों से मिलते हैं, बहुत-सी बातें सुनते हैं और बहुत कुछ पढ़ते हैं। नित्य बहुत-सी अच्छी और बुरी बातें आपके सामने आती रहती हैं। यदि आप उन सभी बातों पर थोड़ा ध्यान देने का अभ्यास कर लेंगे तो नित्य आपको अपने काम की

१ हाथ धोना (मुहा०)=गँवाना, खो देना २ परीक्षा।
३. फलाँ, ऐसा ऐसा ४ जूठन ५ अपना कर लेंगे, अपनायेंगे।

सैकड़ों बातें मिलने लगेंगी। जब आप इस प्रकार किसी विषय पर विचार करते रहेंगे, और उसके भिन्न-भिन्न अंगों को सहायता पहुँचानेवाली बातों की खोज में रहेंगे, तब उससे सम्बन्ध रखनेवाले **नये विचार और नये ढंग भी आपको सूझते रहेंगे**। इस प्रकार की सभी बातें ध्यान में रखना प्रायः असम्भव होगा; अतः ऐसी बातें यदि आप कहीं टाँकते[1] चलेंगे तो आपके पास जानने और बतलाने योग्य बहुत-सी बातों का अच्छा संग्रह हो जायगा, जो समय पर बहुत काम देगा। कोई बात सुन या समझकर उसे कहीं टाँक लेने से कई लाभ होते हैं। इससे हमारी **निरीक्षण करने की योग्यता बढ़ती है** और हम किसी विषय पर कुछ नये ढंग से सोचने-विचारने की शक्ति प्राप्त करते हैं। दूसरे, हमें अपने **विचार ठीक तरह से लिखने की शिक्षा भी मिलती है**—क्रमशः हम यह सीखने लगते हैं कि भाव किस प्रकार ठीक रूप में प्रकट किये जाते हैं। एक और बड़ा लाभ यह होता है कि **स्मृति-पट पर** उसका कुछ अधिक **स्थायी अंकन**[2] **भी हो जाता है**, जो आगे चलकर उस तरह की और-और बातें जानने, ढूँढ़ निकालने या संग्रह करने में सहायक होता है। उत्तम और उपयुक्त बातें केवल स्मृति के भरोसे छोड़ देना मानो उनसे हाथ धोने के लिए तैयार रहना है।

जब बहुत-से विषय, बहुत-सी बातें और बहुत-से विचार आपकी पूँजी[3] बन जायँगे, तब लिखने का काम उतना कठिन न रह जायगा। उस समय आपकी पहली आवश्यकता यह होगी कि आप उन सब बातों और विचारों को अलग-अलग विषय-विभागों में विभक्त कर लें, और तब एक विषय लेकर उस पर लिख चलें। बहुत-सी बातों, घटनाओं, या विचारों को

---

१ नोट करते। २ छाप, मुद्रा (impression)। ३ मूल—धन।

एक साथ गूँथने[1] लगना ठीक नहीं। प्रत्येक विषय थोड़ा-थोड़ा और आंशिक[2] रूप में लिया जाना चाहिये और क्रमबद्ध रूप में लिखा जाना चाहिए। प्रत्येक विचार ही नहीं, बल्कि प्रत्येक वाक्य और यहाँ तक कि प्रत्येक शब्द भी खूब तौलकर लिखना चाहिए। ऐसा करने पर उसे दोहराने[3] और उसमें संशोधन या सुधार करने की बहुत ही कम आवश्यकता रह जायगी। फिर भी जब अपनी भूल मालूम पड़े या कोई अच्छा नया विचार सामने आवे, तब **अपना लेख दोहराने और सुधारने के लिए भी सदा तैयार रहना चाहिए।**

## अभ्यास

१. साहित्य-रचना का मुख्य उद्देश्य क्या है? उसकी पूर्ति कैसे हो सकती है?

२. 'लेखक का काम कुछ अंशों में मधुमक्खियों के काम से मिलता-जुलता है'— समर्थन करो।

३. अर्थ बताकर वाक्यों मे प्रयोग करो—कुछ का कुछ होना, प्रस्तुत करना, विवेच्य, हाथ धोना, आत्मसात् कर लेना।

४. इनके विशेषण रूप लिखो—रचना, साहित्य, प्रतिष्ठा, मन, वैविध्य, दो, माधुर्य, अंश।

---

१ माला के रूप में बाँधना। २ अंश का, भाग का। ३ दूसरी बार लिखने की।

# ४. ईसा का अवसान

लेखक—बेचन शर्मा 'उग्र'

[ श्री बेचन शर्मा 'उग्र' का जन्म मिर्ज़ापुर (उ० प्र०) ज़िले के चुनार गाँव में हुआ। आप एक बड़े प्रतिभाशाली गल्प-लेखक, उपन्यास-कार, नाटककार और कवि हैं। आपकी भाषा प्रखर और हृदयग्राही होती है। इनकी भाषा शैली इनकी अमर विशेषता है। इनका मौलिक नाटक 'महात्मा ईसा' हिंदी नाट्य साहित्य की अेक अमर कृति है।

जब कि हिंदी-नाट्य-संसार में मौलिक नाटकों का अभाव-सा था तब प्रसाद, उग्र आदि नाटककारों ने उसकी पूर्ति करने का प्रयत्न किया 'महात्मा ईसा' भी इसी श्रेणी का है। इस नाटक में शृंगार, करुण, हास्य आदि सब रसों का समावेश हुआ है। प्रकृत दृश्य करुण रस का सुंदर उदाहरण है।

महात्मा ईसा अत्याचारी राजा हेरोद तथा रानी हेरोदिया की पाप-लीलाओं का उद्‌घाटन करते थे। इसलिये ही उन पर क्रांतिकारी होने का मिथ्यारोपण कर फाँसी की सज़ा दी गयी। यहाँ ईसा की मृत्यु के समय का मर्मभेदी दृश्य चित्रित है।]

**स्थान**—वध-भूमि। **समय**-सायं। [ सामने एक ऊँचे स्थान पर क्रूस रखा है। सिपाहियों के बीच में ईसा खड़े हैं और उनके आसनों पर विचारपति शावेल, स्टिफ़ेन, मेरीना इत्यादि बैठे हैं।]

**शावेल**—( बैठे ही बैठे ) सिपाहियो। इस समय तुम जिसे घेरकर खड़े हो वही यहूदियों का सम्राट्[1] है। इसे छोड़ दो! नहीं तो तुम्हारी

---

१ राजाधिराज।

रक्षा असम्भव हो जायगी (ईसा से व्यंगपूर्ण स्वर से) क्यों सम्राट्! हा हा हा हा!

स्टिफ़ेन-सेनापति! तुम्हारे इस परिहास का क्या अर्थ है?

शावेल-(स्टिफ़ेन की ओर घृणित दृष्टि से देखकर) सिपाहियो! सम्राट्* को शीघ्र उनका वस्त्र पहना दो!

सिपाही-जो आज्ञा!

(ईसा को लाल रङ्गका चोग़ा पहनाता है)

शावेल-इनका मुकुट[1] क्या हुआ? उसे भी लाओ!

(सिपाही काँटों का एक मुकुट ईसा के सिरपर रख देता है)

शावेल-बेवकूफ़! एक-एक बात कहनी होगी? राज-दण्ड क्या हुआ?

सिपाही-(एक जंगली लकड़ी दिखाकर) यह है। श्रीमान्!

(ईसा के हाथ में देता है)

शावेल-सम्राट्, सज गये! अब इनकी पूजा होनी चाहिये। अपने हाथों में पुष्प लेकर दो सिपाही सामने आओ!

(कोड़े लेकर दो सिपाही आते हैं)

दोनों सिपा०-पूजन आरम्भ करें?

शावेल-ज़रा ठहरो! मैं 'सम्राट् की जय' कहूँगा और प्रत्येक जय-नाद पर तुम पुष्प-वृष्टि करना! (दर्शकों से) आप सब लोग उठकर सम्राट् की वन्दना कीजिये।

---

*आगे के वाक्यों में जो व्यंग्य (irony) है उसपर दृष्टि रखो।

१ किरीट।

(सब खड़े हो जाते हैं और हास्योत्पादक रीति से ईसा को सलाम, प्रणाम करते हैं)

शावेल—ऐसे नहीं, यह सम्राट् को पसन्द न आयेगा। मैं जय बोलता हूँ, आप लोग मेरा अनुकरण कीजिये। और सिपाहियो! तुम लोग भी आरम्भ कर दो!—'सम्राट् ईसा की जय।'

सब—(भिन्न भिन्न स्वरों में)

'सम्राट् ईसा की जय।'

(ऐसी ही जय-ध्वनि तीन बार होती है और बार-बार सिपाही ईसा को कोड़े लगाते हैं। चौथी बार ज्योंही शावेल जय बोलने को चलता है त्योंही स्टिफ़ेन झपटकर उसका मुँह बन्द कर देता है)

स्टिफ़ेन—शावेल! यहूदियों का प्रगल्भ सेनापति! **नीच!! बस कर!!! तेरे पापों का घड़ा भर गया है। उसे इतनी शीघ्रता से न छलका,[1] नहीं तो कहींका भी न रहेगा।**

शावेल—(झटककर)[2] हट जा सामने से! ईसा के कुत्ते! हट जा! कहता हूँ, हट जा!!

स्टिफ़ेन—यह नहीं हो सकता—कभी नहीं हो सकता! महात्मा ईसा को प्राणदण्ड मिला है, वही दो! तुझे उनका इस प्रकार अपमान करने का कोई अधिकार नहीं है (विचारपति से) आप विचारपति होकर चुप हैं? क्या आपके ओठों को सम्राट् हेरोदने सोने और चाँदी के तारों से सी दिया? बोलते क्यों नहीं?*

---

१ छलकना=पात्र में रहनेवाले जल आदि को हिला-डुलाकर बाहर उछालना। २ एकदम ज़ोर से धक्का देकर।

* स्टिफ़ेन की उदारता देखिए। शावेल से उसकी तुलना कीजिए।

**शावेल**—सिपाहियो ! मारो !! और मारो !!! स्टिफ़ेन हट जाओ, मुझे क्रोध चढ़ रहा है ! मारो ! मारो !! (सिपाही मारते हैं)

**स्टिफ़ेन**—विचारपति ! नहीं-नहीं अविचारपति ! तुम्हें मनुष्य बना कर परमात्माने बड़ी भारी भूल की है । नीच ! तेरे ऊपर अनन्त धिक्कार हैं ! शावेल ! क्रूसपर चढ़ाओ ! महात्माजी को क्रूसपर चढ़ाओ ! उनका अपमान न करो ! मैं हाथ जोड़ता हूँ ! नहीं तो, अब तुम्हारा कल्याण नहीं है !

**शावेल**—कल्याण नहीं है ? मेरा तू एक फतिंगा[1] क्या बिगाड़ लेगा ?

**स्टिफ़ेन**—अच्छा, तो दे आज्ञा ! देखूँ किस मुँह से बोलता है ! इस बार बोलते ही तेरी जीभ पृथ्वी पर नाचने लगेगी, बोल !

**ईसा**—भैया ! शान्त हो ! यह जो कुछ करते हैं ठीक कर रहे हैं, इन्हें मत रोको । †

**स्टिफ़ेन**—क्षमा कीजिये प्रभो ! अब अहिंसा की इति[2] हो गई । आपको अपमानित होते देखकर मैं अपनी आत्मा का अपमान कदापि न करूँगा । क्यों करूँ और किसके भय से करूँ ? ना, कदापि न करूँगा । (शावेल से) नीच !

**शावेल**—मूर्ख गिरगिटान[3] ! क्या टर्र-टर्र करता है । चुप रह ! सिपाहियो ! मा.....

---

१ एक तुच्छ जाति का उड़नेवाला कीड़ा; यहाँ 'तुच्छ अगणनीय कीड़े' से तात्पर्य है । † यहाँ ईसा का शांत स्वभाव और क्षमा गुण देखने योग्य है । २ समाप्ति । ३ छिपकली की जाति का एक जंतु जो दिन में दो बार रंग बदलता है, यहाँ 'पक्ष बदलनेवाला व्यक्ति' से तात्पर्य है ।

(मा...शब्द निकलते ही स्टिफ़ेन शावेल पर झपटता है और उसे एक लात मारकर उसका मुख बन्द कर देता है)

**स्टिफ़ेन**--बोल ! देखूँ कैसे बोलता है ? बोल !

(सिपाही शावेल की रक्षा करते हैं)

**शावेल**—(उठकर) सिपाहियो। इसे गिरफ्तार कर लो ! बाँध लो !!

**स्टिफ़ेन**--बाँध ले नीच ! (सिपाही स्टिफ़ेन को बाँध लेते हैं)

**शावेल**--ले जाओ। अभी इसे हवालात[1] में बन्द करो।

(एक ओर से सिपाही स्टिफ़ेन को ले जाते हैं, दूसरी ओर से एक हाँड़ी लिये एलाज़र आता है)

**एलाज़र**–सेनापति जी, किसी को भूखों न मारिये* ! यह मुझसे न देखा जायगा। ओह, भूखों मरना ? ना ! ना ! बड़ा कष्ट होगा। क्रूस पर चढ़ने में क्या कष्ट है ? परन्तु भूख लगने पर जान पड़ता है मानो पेटको कोई व्याघ्र अपने पंजों से खरोंच रहा है। यह लीजिये, मैंने इनके लिये विशेष रीतिसे यह मछली तैयार करायी है। यह रसेदार है—बड़ी ही स्वादिष्ट है—ओह ! थक गया ! कोई नौकर भी नहीं था और डेविड तो कल ही से रूठा हुआ है—लीजिये !

**शावेल**--(क्रोध से) लाइये महंत जी, क्यों नहीं खिलाऊँगा ? इन्होंने हमारा बड़ा उपकार किया है—इशारे से अपने शिष्यको मेरा अपमान करने को कहा है। क्यों नहीं खाने दूँगा ? यह सम्राट् हैं। दीजिये। (एलाज़र से हाँडी लेकर उसमें थूक देता है) सिपाहियो ! लो, यह सम्राट् का जलपान

---

१ पहरे के भीतर रखा जाना (custody)

* याद रखिए कि एलाज़र बड़ा पेटू है और हमेशा खाने के लिए ही मरता रहता है। इसका यही गुण हास्यास्पद बन गया है।

है, इन्हें खिला दो। ( मुँह फेरकर ) स्टिफ़ेन !—तूने शावेल को क्या समझ रखा है ? अपमान—घोर अपमान ! ( सिपाहियों से ) खिलाओ जी, खड़े क्यों हो !

( सिपाही हाँड़ी को ईसा के मुँह से लगाते हैं वह मुँह फेर लेता है )

**विचारपति**—जाने दो ! अब इसे क्रूसपर चढ़ाओ !

**शावेल**—आप भी खूब कहते हैं—भला सम्राट् अकेले ही सिंहासन पर बैठेंगे ! कोई दरबारी भी तो चाहिये। जाओ, कारागार से दो ऐसे डाकू लाओ जिन्हें प्राणदण्ड दिया गया हो—दो क्रूस भी लाना। वे सम्राट् की अगल-बगल क्रूसपर चढ़ाये जायँगे।

**दो सिपाही**—जो आज्ञा ! ( प्रस्थान )

( मरियम का प्रवेश )

**ईसा**—( धीरे-धीरे ) वह कौन स्त्री आ रही है—यह तो वही मूर्ति...( रुककर ) माँ ! माँ !! तुम यहाँ क्यों आईं ? रोओगी ? देखो रोना मत। तुम्हारा पुत्र क्षणभर बाद स्वर्गीय हँसी हँसेगा। ऐसे अवसर पर तुम रोना मत—सुनती हो माँ !

( ईसा घुटने टेककर प्रणाम करता है और मरियम दौड़कर उसका सिर अपनी छाती में छिपा लेती है। )

**मरियम**—तू भी यही कहता है ? मेरा लाल ! न रोऊँ ? तब क्या करूँ ? माताओं की हास्य नदी अपनी संतानों के विपत्ति-निदाघ से सूख जाती है बेटा ! हाँ, उनका अश्रु-समुद्र कभी नहीं सूखता। समय असमय वे रोना ही जानती हैं। पुत्र को सुखी देखकर आनंद से रो पड़ती हैं और दुखी देखकर शोक से। उस समय उनके आँसुओं का

समुद्र क्षुब्ध[1] हो उठता है—उमड़ पड़ता है—हृदय-पोत[2] को उलट-पलट देता है। बेटा ! हृदय ! लाल !! न रोऊँ ? अच्छा न रोऊँगी—तू हँस ! देखूँ तो वह हँसी जो मेरी भूख-प्यास दूर कर देती है। देखूँ तो वह हँसी, जिसमें स्वर्ग उमड़ा पड़ता है—देखूँ ? रोऊँगी क्यों ? पर.....

ईसा—माता ! (चोगे से आँसू पोछता है)

मरियम—बड़ा सुख है ! बड़ा आनंद है। इसी समय परमात्मा, अंतर्यामिन् ! उठा लो ! मुझे उठा लो ! तुम परमात्मा हो तो क्या ? आशीर्वाद पाओगे—मातृ-हृदय का आशीर्वाद तुम्हें भी सुखद होगा।

शावेल—हट रे, यहाँ से ! आई है ढकोसला[3] फैलाने*। (सिपाहियों से) अरे ! एक आदमी जाकर देखो वे कहाँ रह गये ? डाकुओं को भी लाये नहीं !

सिपाही—वे आ गये प्रभो !

(सिपाहियों का दो बँधे हुए डाकुओं के साथ प्रवेश)

मरियम—(शावेल से) तुम कौन हो भैया ? इतनी नीरस बात कैसे बोलते हो बेटा ! क्या तुम्हारी माँ नहीं है ? तुमने जननी-हृदय नहीं देखा है ? अच्छा, आओ देखो ! चीर डालो मेरा हृदय और देखो उसमें कौन-सा ढकोसला है ! भैया, यदि माता के हृदय में ढकोसला होता, तो तुम आज इतने बड़े न होते। तुम होते या नहीं, इसमें भी संदेह है—(ईसा से) मेरे लाल ! (लिपट जाती है)

---

१ व्याकुल, विचलित। २ जहाज। ३ धोखा, दिखावट।

* शावेल की कैसी निष्ठुरता है !

**शावेल**—सिपाहियो, इस डायन[1] को पकड़कर ले जाओ ! किसी जंगल में छोड़ आओ—जाओ। (सिपाही मरियम को घसीटते हैं।)

**मरियम**—(आवेश से) मत हटाओ ! गाय को उसके बच्चे से दूर न करो ! नहीं तो, अनर्थ हो जायगा। हाय, तुम सबके सब निर्दयी हो—निष्ठुर हो ! अभिशाप-माता का अभिशाप लोगे ? मान जाओ भैया ! बेटा ! (सिपाही दूर घसीट ले गये)

**मरियम**—नहीं मानोगे ? पापियो ! जाओ ! प्रलय हो जाय ! तुम्हारा सर्वनाश हो जाय ! युरोशलीम पर वज्रपात हो !

(सिपाही घसीट ले गये)

**ईसा**—(अर्ध-स्वगत) माता का अपमान ! मेरे हृदय में यह कैसा आन्दोलन हो रहा है ! माता का...! पर इस अत्याचारी शासन में तो न जाने कितनी माताओं का नित्य प्रति योंही अपमान होता है... चलेगा ? दयामय अत्याचार का शकट[2] अभी और आगे चलेगा ?--नहीं...। माता का अपमान !

**शावेल**—(सिपाहियों से) इन डाकुओं के क्रूस भी दुरुस्त हो गये ? अच्छा पहले ईसा के हाथों और पैरों में काँटे ठोंक दो ? जल्दी करो—दिन बहुत कम है।

(शान्ति का सावेश प्रवेश)

**शान्ति**-ठहरो ! अत्याचार के बादलो ! सूर्यास्त के पहले, कमलिनी को अपने मित्र की पवित्र मूर्ति आँख भर देख लेने दो ! नहीं तो उसके दुखी हृदय से प्रचण्ड आँधी की तरह शोकोच्छ्वास निकलेगा और तुम्हारे

१ चुड़ैल, राक्षसी। २ गाड़ी।

सुख-सौभाग्य का बेड़ा ग़र्क[1] हो जायगा। ठहरो! क्रूरता की अग्नि-शिखाओ! किसी दरिद्र का सर्वस्व भस्मसात् करने के पहले उसे अपनी निधि-निरीक्षण कर लेने दो, नहीं तो उसकी आँखों से वह सजल-तूफान प्रकट होगा जिसमें तुम्हारा अस्तित्व तक लुप्त हो जायगा! जल्दी मत करो!

शावेल—(शान्ति को न पहचानकर सक्रोध) अब यह कौन आयी?

शान्ति—मैं हूँ—हेरोद के सेनापति! पहचानो तो, तुमने मुझे कभी देखा है?

शावेल—तू...तुम ..आप? *उस दिनवाली! (सर झुका लेता है)

ईसा—शान्ति!

शान्ति—प्रभो! मैं समझ गयी। आप मेरे आँसुओं से डरते हैं। नहीं। उनकी चिन्ता भूलकर भी न कीजियेगा। मैं इस समय बहुत ही प्रसन्न हूँ। चलिये, मैं आपके साथ ही चलूँगी।

ईसा—तुम क्या कहती हो? शान्ति!

शान्ति—कुछ नहीं। आज आपकी तैयारी है यह सुनकर मैंने भी अपना सामान ठीक कर लिया है। जहाँ चंद्रमा होगा वहीं पर उसकी प्रेमिनी चकोरी भी रहेगी। मैंने पास ही के वन में अपनी चिता अपने ही हाथों चुनकर सजा दी है और उसमें आग लगाकर आपकी चरण-धूलि लेनेको यहाँ भागी आयी हूँ। दीजिये, नाथ! मुझे चरण-रज दीजिये। मैं आपके साथ ही चलूँगी।

---

१ निमग्न, डूबा हुआ।

* देखो उसको देखकर किस प्रकार डरकर 'तू, तुम, आप' का प्रयोग करता है! एक ही व्यक्ति के लिए तीनों शब्दों का एक साथ प्रयोग!

( ईसा की चरण-रज अपने सिर पर चढ़ाती है )

ईसा—शान्ति !

शान्ति--नहीं स्वामिन् ! कुछ न कहिये ! हाथ जोड़ती हूँ, कुछ न कहिए ! मैं अवश्य चलूँगी । बड़ी इच्छा है । वहाँपर दमयन्ती को देखूँगी, सावित्री, सीता और द्रौपदी के दर्शन पाऊँगी—बस ! देर हो रही है। मेरी चिता तैयार है । सुनिये, कान देकर सुनिये ! अग्निदेव मुझे 'हो ! हो' कर पुकार रहे हैं--बस, नाथ !

( तीर-सी छूटकर जाती है )

ईसा--धन्य ! आर्य भूमि ! धन्य शान्ति !

शावेल--गयी ! वह गयी ! उसमें बिजली से अधिक ज्योति थी ! ओह ! मेरी आँखें फूटने से बच गयीं । सिपाहियो, जल्दी करो ! सबके कपड़े उतार क्रूसपर चढ़ाओ !

( सिपाही पहले ईसा के कपड़े उतार उसे क्रूसपर खड़ाकर उसके हाथों-पावों और मस्तक[1] में कील ठोंकते हैं । ( वह छटपटाता है )

शावेल—बुला, अपने ईश्वर को ! ज़रा देखूँ तो उसका मुँह कैसा है !

( वायु हा-हा करती है, बादल गरजते हैं )

## अभ्यास

१. इस दृश्य को तुम किस दृष्टि से उत्तम समझते हो ? उदाहरण देकर समर्थन करो ।

१ सिर ।

२. वध-भूमि में शावेल की असभ्यता का वर्णन करो ।

३. टिप्पणियाँ लिखो—एलाज़र, शांति, द्रौपदी, दमयंती ।

४. पठित दृश्य के आधार पर ईसा के व्यक्तित्व का वर्णन करो ।

५. शावेल और स्टिफ़ेन के चरित्र की तुलना करो ।

६. ससंदर्भ व्याख्या करो :—

(अ) नीच !! बस कर !!!...न रहेगा ( पृ० २१ पं. ११-१३)

(आ) माताओं की हास्य नदी...उलटपलट देता है ( पृ० २४ पं० १९-२३...)

(इ) गाय को उसके...अभिशाप लोगे ? (पृ० २६, प० ३-५)

(ई) जहाँ चंद्रमा...रहेगी (पृ० २७ पं० १६-१७ )

# ५ हिन्दी गद्य का विकास

## लेखक—श्यामसुंदरदास

[बाबू श्यामसुंदरदास हिंदी-साहित्य के सुप्रसिद्ध विद्वान्, लेखक और समालोचक थे। आप खत्री वंश के थे। आपका जन्मस्थान काशी है। आपने **काशी नागरी प्रचारिणी सभा** के लिए अपना संपूर्ण जीवन ही दे डाला था। आपकी साहित्यिक सेवाओं पर मुग्ध होकर इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने आपको 'डॉक्टर' की उपाधि देकर सम्मानित किया था। सरकार ने भी आपके गौरवमय व्यक्तित्व को देखकर पहले ही 'रायबहादुर' की उपाधि दी थी।

आपकी शैली परिमार्जित एवं भाषा शुद्ध और सुलझी हुई होती है। किंतु कहीं-कहीं विषय-गंभीरता के कारण उसमे दुरूहता आ जाती है। आपने **रामचरित मानस, पृथ्वीराज रासो, हिन्दी शब्द-सागर** आदि ग्रंथों का संपादन किया है। इसके अतिरिक्त भाषा-विज्ञान, साहित्यालोचन, भारतेंदु हरिश्चंद्र आदि अन्यान्य कृतियाँ भी इनकी हैं।

प्रस्तुत पाठ में यह दिखाया गया है कि हिंदी गद्य का उद्गम कब हुआ, वह कैसे पनपा और उसके विकास में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने क्या सेवा की।]

आधुनिक युग की सबसे बड़ी विशेषता है खड़ी बोली[१] में गद्य का विकास। इस भाषा का इतिहास बड़ा ही रोचक[२] है। यह भाषा मेरठ के चारों ओर के प्रदेश में बोली जाती है और पहले वहीं तक इसके प्रचार

---

१ खड़ी बोली पश्चिमी हिंदी का वह रूप जो दिल्ली-मेरठ के आस-पास बोला जाता है। आधुनिक पद्य और गद्य प्रायः इसी बोली में लिखे जाते हैं। २ रुचिकर, मनोहर।

की सीमा थी, बाहर इसका बहुत कम प्रचार था। जब मुसलमान इस देश में बस गये और उन्होंने यहाँ अपना राज्य स्थापित कर लिया तब दिल्ली में मुसलमानी शासन का केंद्र होने के कारण विशेष रूप से उन्होंने उसी प्रदेश की भाषा—खड़ी बोली—को अपनाया। यह कार्य एक दिन में नहीं हुआ। अरब, फारस और तुर्किस्तान से आए हुए सिपाहियों को यहाँ वालों से बातचीत करने में पहले बड़ी कठिनता होती थी। न ये उनकी अरबी-फारसी समझते थे और न वे उनकी हिंदवी[1]। पर बिना व्यवहार के काम चलना असंभव था। अतः दोनों ने दोनों के कुछ कुछ शब्द सीखकर किसी प्रकार आदान-प्रदान[2] का मार्ग निकाला। यों मुसलमानों की उर्दू[3] [छावनी] में पहले पहल एक खिचड़ी पकी जिसमें दाल-चावल सब खड़ी बोली के थे, केवल नमक आगंतुकों ने[4] मिलाया। आरंभ में तो वह निरी बाजारू-बोली थी; पर धीरे-धीरे व्यवहार बढ़ने पर और मुसलमानों को यहाँ की भाषा के ढाँचे का ठीक ठीक ज्ञान हो जाने पर इसका रूप कुछ स्थिर हो चला। जहाँ पहले शुद्ध-अशुद्ध बोलनेवालों से सही[5]-गलत बोलवाने के लिये शाहजहाँ को "शुद्धौ सहीह इत्युक्तौ ह्यशुद्धौ गलतः स्मृतः"[6] का प्रचार करना पड़ा था वहाँ अब इसकी कृपा से लोगों के

१ पहले पहल हिंदी का यही नाम था। २ लेने-देने का। ३ 'उर्दू' एक तुरकी शब्द है जिसका अर्थ छावनी (cantonment) है। ४ नये आये हुए आदमियों ने। ५ ठीक (यह अरबी शब्द 'सहीह' का विकृत रूप है)। ६ यह संस्कृत भाषा में लिखा एक अर्धश्लोक है। इसकी रचना, खिचड़ी भाषा की खिल्ली उड़ाने के लिए, अरबी के 'सहीह' और 'गलत' (dle) शब्दों को उद्देश्यपूर्वक जोड़कर, की गयी है। इस श्लोकार्ध का यह अर्थ होता है—यदि 'शुद्ध' के लिए 'सहीह' का प्रयोग होता तो 'अशुद्ध' के लिए 'गलत' प्रयुक्त हो।

मुँह से शुद्ध-अशुद्ध न निकलकर सही-ग़लत निकला करता है। आज कल जैसे अँगरेजी पढ़े-लिखे भी अपने नौकर से एक ग्लास पानी न माँगकर एक गिलास ही माँगते हैं, वैसे उस समय मुख्य-मुख्य उच्चारण और परस्पर बोध-सौकर्य के अनुरोध से वे लोग अपने 'ओजवेक' का 'उजबक', 'कुतका' का 'कोतक' कर लेने देते और स्वयं करते थे, एवं ये लोग 'बेरहमन'[1] सुनकर भी नहीं चौंकते थे। बैसवाड़ी[2] हिन्दी बुंदेलखंडी हिंदी पंडिताऊ[3] हिंदी और बाबू इंगलिश की तरह यह उस समय उर्दू हिंदी कहलाती थी, पर पीछे भेदक शब्द स्वयं भेद्य बनकर उसी प्रकार उस भाषा के लिये प्रयुक्त होने लगा जिस प्रकार 'संस्कृत[4] वाक्' के लिये केवल 'संस्कृत' शब्द। मुसलमानों ने अपनी संस्कृति के प्रचार का सबसे बड़ा साधन मानकर इस भाषा को खूब उन्नत किया और जहाँ-जहाँ फैलते गए, वे इसे अपने साथ लेते गए। उन्होंने इसमें केवल फारसी तथा अरबी के शब्दों की ही, उनके शुद्ध रूप में, अधिकता नहीं कर दी, बल्कि उसके व्याकरण पर भी फारसी-अरबी व्याकरण का रंग चढ़ाया। इस अवस्था में इसके दो रूप हो गए, एक तो हिंदी कहलाता रहा और दूसरा उर्दू नाम से प्रसिद्ध हुआ।

---

१ 'ब्राह्मण' का विकृत रूप। २ बैसवाड़ी (या अवधी) और बुंदेलखंडी ये दोनों हिंदी की उप-भाषाएँ या 'बोलियाँ' हैं। ३ पंडितों के ढंग की, पंडितों से प्रयुक्त की जानेवाली। ४ 'संस्कृत' का अर्थ है परिमार्जित, सुधारी हुई, संशोधित। पाणिनि मुनि ने बोल-चाल की भाषा को 'अष्टाध्यायी' नामक व्याकरण सूत्र लिखकर एक सुदृढ़ रूप दे दिया। यह संशोधित (संस्कृत) भाषा पहले 'संस्कृत वाक्' या 'परिशुद्ध भाषा' कहलाती थी, परंतु क्रमशः उसका नाम 'संस्कृत' ही पड़ गया।

दोनों के प्रचलित शब्दों को ग्रहण करके, पर व्याकरण का संघटन हिंदी के अनुसार रखकर अँगरेजों ने इसका एक तीसरा रूप हिंदुस्तानी बनाया।

भ्रमवश हिंदी खड़ी बोली गद्य के जन्मदाता लल्लूलालजी माने जाते हैं। यह भ्रम उन अँगरेजों के कारण फैला है जो अपने आने के पहले हिंदी में गद्य का अस्तित्व[1] स्वीकार ही नहीं करते थे। परंतु यह बात असत्य है। अकबर बादशाह के यहाँ संवत् १६२० के लगभग गंग भाट था। उसने "चंद[2] छंद बरनन[3] की महिमा" खड़ी बोली के गद्य में लिखी है। उसके पहले का कोई प्रामाणिक गद्य लेख न मिलने के कारण उसे खड़ी बोली का प्रथम गद्य-लेखक मानना चाहिए। इसी प्रकार संवत् १६८० में जटमल ने "गोरा बादल की कथा" भी इसी भाषा के तत्कालीन गद्य में लिखी है। लल्लूलालजी हिंदवी को आधुनिक रूप देनेवाले भी नहीं हैं। उनके और पहले का मुंशी सदासुख का किया हुआ भागवत का हिंदी अनुवाद सुखसागर वर्तमान है। इसके अनंतर इंशाअल्लाखाँ, लल्लूलालजी तथा सदलमिश्र का समय आता है। इंशाअल्लाखाँ की रचना में शुद्ध तद्भव शब्दों का प्रयोग है। उनकी भाषा सरल और सुन्दर है, पर वाक्यों की रचना उर्दू ढंग की है। इसी लिये कुछ लोग उसे हिंदी का नमूना न मानकर उर्दू का पुराना नमूना मानते हैं। लल्लूलालजी के प्रेमसागर से सदलमिश्र के नासिकेतोपाख्यान की भाषा अधिक पुष्ट और सुंदर है। प्रेमसागर में भिन्न-भिन्न प्रयोगों के रूप स्थिर नहीं देख पड़ते। करि, करिके, बुलाय, बुलायकरि, बुलायकरिके, बुलायकर आदि अनेक रूप अधिकता से मिलते हैं। सदल मिश्र में यह बात नहीं है। सारांश यह है कि यद्यपि फोर्ट विलियम कालेज के अधिकारियों, विशेषकर डाक्टर गिलक्रिस्ट की कृपा से हिंदी गद्य का प्रचार बढ़ा और उसका भावी मार्ग प्रशस्त तथा सुव्यव-

१ होना (existence)। २ कुछ। ३ वर्णन।

स्थित हो गया; पर लल्लूलालजी उसके जन्मदाता नहीं थे। जिस प्रकार मुसलमानों की कृपा से हिंदी का प्रचार और प्रसार बढ़ा उसी प्रकार अँगरेजों की कृपा से हिंदी गद्य का रूप परिमार्जित और स्थिर होकर हिंदी साहित्य में एक नया युग उपस्थित करने का मूल आधार अथवा प्रधान कारण हुआ।

उपर्युक्त चार लेखकों ने हिंदी-गद्य की पहले-पहल प्रतिष्ठा की और उसमें ग्रंथ-रचना की चेष्टा की। इनमें मुंशी सदासुख और सदल मिश्र की भाषा अधिक उपयुक्त ठहरती है। इनमें भी सदासुख को अधिक सम्मान मिलना चाहिए, क्योंकि ये कुछ पहले ही हुए और इन्होंने कुछ अधिक साधु भाषा का व्यवहार भी किया। इनके उपरांत विदेशों से आई हुई क्रिश्चियन मत का प्रचार करने वाली धर्म-संस्थाओं अथवा मिशनों ने हिंदी में अपने कुछ धर्मग्रंथों, विशेषकर बाइबिल का अनुवाद किया। बाइबिल का अनुवाद भाषा की दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण है। यह देश के विस्तृत भूभाग में फैली खड़ी बोली की सामान्यतः साधु भाषा में किया गया है। पता चलता है कि राजनीतिक दाँव पेंच[1] को पहले से ही जानने और प्रयोग करनेवाले अँगरेजों ने मुसलमानों की उर्दू को कचहरियों में जगह दी थी, पर वे यह भली भाँति जानते थे कि उर्दू यहाँ के जन-समाज की भाषा कदापि नहीं; नहीं तो बाईबिल के अनुवाद के शुद्ध हिंदी में होने का कोई कारण नहीं। उर्दूपन उससे बहुत दूर रखा गया। उसकी भाषा का रूप सदासुख और लल्लूलालजी की भाषा की ही भाँति है, पर विदेशीय रचनाशैली के कारण थोड़ा बहुत अंतर अवश्य देख पड़ता है। लल्लूलालजी की भाषा में ब्रज की बोली मिली हुई है; पर उपर्युक्त अनुवाद ग्रंथों में उसका बहिष्कार कर मानों खड़ी[2] बोली के आगामी

१ घुमाव-फिराव, गति-क्रम। २ खड़ी बोली।

प्रसार की पूर्व सूचना सी दी गई है। जब ईसाइयों की धर्म-पुस्तकें निकल रही थीं तब छापे की कल[1] इस देश में आ चुकी थी, जिससे पुस्तकों के प्रसार में बड़ी सहायता मिली।

छापेखानों के फैल जाने पर हिंदी की पुस्तकें शीघ्रता से बढ़ चलीं। इसी समय सरकारी अँगरेजी स्कूल भी खुले और उसमें हिंदी-उर्दू का झगड़ा किया गया। मुसलमानों की ओर से सरकार को यह समझाया गया कि उर्दू को छोड़कर दूसरी भाषा संयुक्त प्रांत में है ही नहीं। कचहरियों में उर्दू का प्रयोग होता है मदरसों में भी होना चाहिए। परंतु सत्य का तिरस्कार बहुत दिनों तक नहीं किया जा सकता। देवनागरी लिपि की सरलता और उसका देशव्यापी प्रचार अँगरेजों की दृष्टि में आ चुका था। लिपि के विचार से उर्दू की क्लिष्टता और अनुपयुक्तता भी आँखों के सामने आती जा रही थी। परंतु नीति के लिये सब कुछ किया जा सकता है। इसी समय युक्तप्रांत में स्कूलों के इन्सपेक्टर हिंदी के पक्षपाती काशी के राजा शिवप्र ाद नियुक्त किए गए। राजा साहब के प्रयत्न से देवनागरी लिपि स्वीकार की गई और स्कूलों में हिंदी को स्थान मिला।

राजा साहब ने अपने अनेक परिचित मित्रों से पुस्तकें लिखवाईं और स्वयं भी लिखीं। उनकी लिखी हुई कुछ पुस्तकें में अच्छी हिंदी मिलती है, पर अधिकांश में उर्दू-प्रधान भाषा ही उन्होंने लिखी। ऐसा उन्होंने समय और नीति को देखते हुए अच्छा ही किया। यदि वे इस नीति से न चलते तो कदाचित् देवनागरी अक्षरों के प्रचार में भी अनेक बाधाएँ उपस्थित होतीं जिनका निवारण करना उन अक्षरों के पक्षपातियों के लिये कठिन होता। इसी समय के लगभग हिंदी में संस्कृत के शकुतला नाटक आदि का अनुवाद करनेवाले राजा लक्ष्मण सिंह हुए। जिनकी कृतियों में सर्वत्र शुद्ध संस्कृत-विशिष्ट खड़ी बोला प्रयुक्त हुई। इसमें

१ यंत्र (प्रेस)।

कुछ भी संदेह नहीं कि दोनों राजा साहबों ने अपने-अपने ढंग से हिंदी का महान उपकार किया।

**भारतेंदु हरिश्चंद्र**—के कार्यक्षेत्र में आते ही हिंदी में समुन्नति का युग आया। अब तक तो खड़ी बोली के गद्य का विकास होता रहा और पाठ-शालाओं के उपयुक्त छोटी-छोटी पुस्तकें लिखी जाती रहीं, पर अब साहित्य के अनेक अंगों पर ध्यान दिया गया। सच बात तो यह है कि इस समय हिंदी-साहित्य-गगन में भारतेंदु का उदय ही हिंदी भाषा के भविष्य मार्ग को सुस्पष्ट, सुगम्य, प्रशस्त और सुरम्य बनाने का मूल कारण हुआ। भारतेंदुजी ने राजा शिवप्रसाद के प्रतिकूल और राजा लक्ष्मणसिंह के अनुकूल हिंदी को संस्कृत-गर्भित भाषा का आवरण पहनाना अपना ध्येय समझा और इस कार्य में वे इतनी दृढ़ता, पटुता और उदारता से अग्रसर हुए कि उन्हीं की रखी हुई सुदृढ़ नींव पर हिंदी का वर्तमान प्रासाद खड़ा हुआ है और वह दिनोंदिन अलंकृत और सुसज्जित होता जा रहा है। × × ×

भारतेंदु जी ने हिंदी में समाचार पत्र तथा पत्रिकायें निकालीं, साहित्य के भिन्न-भिन्न अंगों की पुष्टि के लिए अनेक विषयों के ग्रंथ लिखे और लिखवाये तथा उनके प्रचार में असीम[1] धन व्यय करके आप अंत में अकिंचन[2] हो गये। निबंधों, समालोचनाओं, कथा-कहानियों, उपन्यासों, ऐतिहासिक लेखों, प्राचीन शोध-संबंधी लेखों आदि का सूत्रपात उनके समाचार पत्रों, पत्रिकाओं तथा ग्रंथों से हुआ, जिसमें उनके समकालीन विद्वानों ने पूर्ण सहयोग-पूर्वक उनकी सहायता की। "कविवचन-सुधा" और "हरिश्चंद्र चंद्रिका" का नाम हिंदी-साहित्य के वर्तमान इतिहास में सदा अमर बना रहेगा। इसी चंद्रिका में हिंदी का सुंदर निखरा हुआ रूप पहले पहल देखने में आया। × × × ×

१ अपरिमित, अत्यधिक। २ निर्धन।

भारतेंदुजी ने जिस भाषा-शैली का उपयोग किया है वह हृदयग्राही और उपयोगी है। उन्होंने भाषा को शक्ति संपन्न बनाने का पूरा उद्योग किया और इसमें वे सफल भी हुए। यह सब होते हुए भी यह कहना पड़ेगा कि उनकी भाषा में व्याकरण के नियमों की ओर उतना ध्यान नहीं दिया गया है जितना दिया जाना चाहिए था। अवधी तथा ब्रजभाषा के व्याकरण-सम्मत प्रयोग भी जहाँ-तहाँ देखने को मिलते हैं। यह त्रुटि आगे चलकर दूर हुई। फिर भी इतना मानना ही पड़ेगा कि भारतेंदुजी ने हिंदी भाषा को श्री और शक्ति-संपन्न बनाने में कोई बात उठा नहीं रखी। उन्होंने कीचड़ में फँसी हुई भाषा को बाहर निकालकर स्वच्छ पक्के मार्ग पर खड़ा कर दिया और उसमें वह शक्ति दे दी जिससे वह अपने भविष्य मार्ग पर सुगमता से अग्रसर होती हुई, निरंतर उन्नति करती चली जाय।

## अभ्यास

१. 'खड़ी बोली का विकास' के विषय पर पठित पाठ के आधार पर एक छोटा लेख लिखो।

२. श्री श्यामसुंदरदासजी का हिंदी साहित्य में क्या स्थान है? दस वाक्यों में लिखो।

३. खड़ी बोली किसे कहते हैं? और क्यों? इसके जन्मदाता कौन थे? संक्षेप में लिखो।

४. खड़ी बोली गद्य के विकास में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने किन किन बातों में सहयोग दिया?

५. छोटी टिप्पणियाँ लिखो—
हिंदवी, उर्दू, खिचड़ी, सुखसागर।

६. संधि विच्छेद करो—परंपरागत, इत्युक्तो, सांगोपांग, अन्वीक्षण

७. नामवाचक (संज्ञा) रूप लिखो—
तत्कालीन, आधुनिक, शुद्ध, उपास्थित, वास्तव।

८. कारक किसे कहते है? और वे कितने हैं? उदाहरण दो।

# ६. बाघ से भिड़न्त

लेखक—श्रीराम शर्मा

[श्रीराम शर्माजी का नाम हिंदी के शिकार साहित्य में बड़ा प्रसिद्ध है। आप कलकत्ते की मासिक पत्रिका 'विशाल भारत' के सिद्धहस्त संपादक हैं। आपको मृगया से विशेष प्रेम है। अतएव आपने हिंदी साहित्य में पहले-पहल शिकार साहित्य का अंकुरार्पण किया और उसकी श्री वृद्धि भी की। आपका वर्णन सजीव और रोचक होता है। भाषा विषय के अनुरूप सुघड़ है। देखिए, बाघ से मुठभेड़ का कितना रोमांचकारी वर्णन इस पाठ में किया गया है!]

सायंकाल के चार बजे थे। स्कूल से लौटकर घर में गरम-गरम चाय पी रहा था। छोटी लडकी अपनी भोली और पाक[1] दृष्टि से, पास ही बैठी, खिलौना खेल रही थी—"बाबूजी! इछे[2] भी चाय दे दो, थंद[3] लग रही है।" मैं कुछ कहना ही चाहता था कि किसी ने बाहर से पुकारा—"मास्टर साहब! मास्टर साहब! ज़रा बाहर आइए। एक आदमी आया है। बाघ की खबर लाया है।" बाघ का नाम सुनकर मैं उछल पड़ा। चाय का पियाला वहीं-का-वहीं रखकर झट से बाहर आया।

*बाघ से भिड़न्त*

देखा तो बाहर पश्मीना[4] की चादर ओढ़े मेरे शिकारी मित्र पं० लक्ष्मीदत्त थपलियाल खड़े हैं, और उनकी बग़ल में एक हाड़ का

---

१ (फ़ा) निर्मल, निर्दुष्ट, पापरहित। २ (बच्चों की बोली) इसे। ३ ठंढ़, शीत, सरदी। ४ एक जाति का मुलायम ऊनी कपड़ा।

कंकाल[1] —बूढ़ा—खड़ा है। उसकी मुखाकृति उसकी अंतर्वेदना की द्योतक थी। कष्ट, विपत्ति और समय के उलट-फेर ने उसकी गति, तूफ़ान में फँसे जहाज़ की सी, कर दी थी *।

चिंता ने कौतूहल का स्थान लिया, और बातचीत से मालूम हुआ कि बाघ ने टिहरी[2] से कुछ दूर एक साथ ही दो गायों का वध किया है।

एक तो दिन-भर की थकावट, दूसरे कुसमय और तिस पर[3] कड़ाके का[4] जाड़ा—तबियत बाहर निकलने को न करती थी, पर उस बूढ़े की आँखों में एक खिंचाव था, जो हृदयतंत्री के तारों को अपनी ओर खींच रहा था।

वह खिंचाव, किसी कंपायमान, भावी आशंका से भयभीत, बलि-पशु की आँखों से निकलती हुई मूक-याचना का खिंचाव-सा था। उसकी आँखें कह रही थीं कि यदि तुम हृदयहीन नहीं हो, तो हमारी रक्षा करो।

बन-बीहड़ सहचरी[5] बंदूक उठाई। कारतूस[6] जेब में डाले और लक्ष्मीदत्त जी तथा बूढ़े किसान को साथ लेकर जंगल की राह ली[7]। चला जाता था और मन ही मन सोचता जाता था कि **संसार में जीवन संग्राम-समस्या बड़ी विकट है। मनुष्य से लेकर कीड़े-मकोड़े तक**

१ अस्थिपंजर, हाड़ का कंकाल (मुहा०)=बहुत दुबला—पतला आदमी २। उत्तर-प्रदेश का एक छोटा शहर। ३ तिसपर=उसपर। ४ कड़ाके का (मुहा०) ज़ोर का, तेज, प्रबल। ५ जंगल के ऊबड़-खाबड़ में साथ देनेवाली। ६ गोली भरी बारूद (अंग्रेजी 'कारट्रिज')। ७ राह लेना (मुहा०) चल पड़ना।

* देखो बूढ़े का कैसा सुघड़, सुंदर वर्णन किया है!

उदर-पूर्ति के लिए एक दूसरे के खून के प्यास होते हैं। यदि कोई मनुष्य किसी मनुष्य को मारता है तो पापी कहलाता है, पर जब बाज़ और बाघ चिड़िया और गाय मारते हैं, तब हम केवल यह कहकर ही चुप हो जाते हैं कि 'जीवो जीवस्य भोजनम्' अर्थात् 'जीव ही जीव का भोजन है।' कल्पनाशक्ति अपनी उड़ान[1] में हिंसा के मूलतत्व के विश्लेषण की ओर उड़ रही थी कि बूढ़े ने कंधे पर हाथ रखकर कहा—"मालिक, ऊपर देखो। ठीक उस डाँडे[2] पर मेरी बड़ी गाय मरी पड़ी है। और वहाँ से चार फर्लांग पर पहाड़ की दूसरी ओर दूसरी गाय पड़ी है।"

बूढ़े की बात सुनकर दार्शनिक विचारों ने अपनी राह ली, और बाघ मारने की सूझी। लक्ष्मीदत्त जी और मुझ में चार-पांच मिनिट के लिए परामर्श हुआ। परामर्श क्या था, एक प्रकार की युद्ध-कान्फरेन्स-सी थी जिस में अपने शत्रु की सब चालों का ख़याल किया गया।

बाघ ने दो गायें मारी थीं। परामर्श से हम लोग इस नतीजे पर नहीं आये थे कि एक ही बाघ ने दो गायों को मारा है। संभव है, मारा हो। पहली गाय को मारने के पश्चात् यदि किसी प्रकार वह वहाँ से भगा दिया गया होगा, तो उसने दूसरी गाय को मार्ग में पाकर पेट की अग्नि शांत करने के लिये उसको मार डाला हो और यह भी संभव था कि दूसरी गाय को किसी दूसरे बाघ ने मारा हो। मेरी राय यही थी और लक्ष्मीदत्त जी ने मुझे जनरल मानकर मेरा आर्डर माना।

दो बाघों की आशंका से हम लोगोंने अपने दल को दो भागों में विभाजित किया। लक्ष्मीदत्त जी तो दूसरी गाय की लाश की ओर चले, जो सामने की डांडेपर मरी पड़ी हुई गाय से चार फर्लांग दूर गाँव की

१ छलाँग, कुदान। २ दूर तक फैली हुई ऊँची तंग ज़मीन।

ओर थी। मैं डांडे की ओर चला। मैंने निश्चय किया कि समय अधिक हो जाने पर लाश पर आज बैठना ठीक नहीं क्यों कि बैठने के लिए स्थान दिन में चार बजे तक बन जाना चाहिए था, जिससे बाघ को किसी बात का शक न हो। स्मरण रहे, बाघ जंगल का कूटनीतिज्ञ चाणक्य है। छोटी-सी हिलती पत्ती से, आसन बदलने से और कोई-कोई तो कहते हैं कि पलक की आवाज़ तक से बाघ अपने शत्रु को निकट समझ लेता है और लाश पर नहीं आता। इसलिए बाघ को मारने के लिए झाड़ी और काँटों से जो स्थान बनाते हैं वे दिन में चार बजे तक बना लेते हैं और बनाते समय कुछ आदमियों को इधर-उधर बैठा देते हैं, जिससे बाघ यह समझे कि किसान घास काट रहे हैं। जब शिकारी छिपकर बैठ जाते हैं, तब और लोग बातें करते चले जाते हैं, जिससे बाघ समझे कि घास काटनेवाले चले गए और उसका भोजन निरंतर[1] पड़ा है। ऐसा होने पर भी बाघ एकदम शिकार पर नहीं आता। छिप-छिपकर और रुक-रुक कर चारों ओर देख-देख कर एक-एक गज़ बढ़ता है।

लक्ष्मीदत्त जी बूढ़े के साथ छोटी गाय की लाश की ओर चले। हम दोनों को गाँव में मिलना था।

मुझे एक मील के लग-भग पहाड़ की चोटी पर पहुँचना था और समय तंग हो रहा था। जंगल में बाघ अपने शिकार पर ४–५ बजे ही आ जाता है, इसलिए मैं बड़ा चौकन्ना[2] होकर चल रहा था। पहाड़ की चोटी पर डूबते हुए सूर्य की लाल किरणें ग़ज़ब[3] ढा रही थीं[4]। जीवन-ज्योति इसी प्रकार अंतिम प्रकाश करके अनंत में लीन हो जाती है। दार्शनिक विचारों को फिर रोका और जीवन एवं मृत्यु--बाघ के शिकार का प्रश्न सम्मुख आ गया।

१ बेखटके, बिना अड़चन के। २ होशियार, सजग। ३ विलक्षण शोभा। ४ फैला रही थीं।

रात्रि के आगमन के चिह्न चारों ओर दृष्टि-गोचर हो रहे थे। चिड़ियाँ झाड़ियों में चहचहा रही थीं। किसान थके-माँदे घर को लौट रहे थे। बाघ का अपने शिकार पर आने का यही समय होता है। मैं चढ़ाई पर एक-एक पैर संभाल कर रख रहा था। कहीं चुपचाप बाघ दिखाई पड़ जाय और बाघ मुझे न देख पाय, तो फिर एक बार जीवन की बाज़ी लगाकर फायर (Fire) कर दी जाय।

बाघ और शिकारी जब घात लगाकर चलते हैं तब उनकी आकृति देखने योग्य होती है। मनुष्य तो मनुष्य की श्रेणी और सद्भावनाओं और भावुक विचारों के जगत् से गिरकर पशु ही हो जाता है। स्नायु[1] खिंचे हुए, पुट्ठे[2] जकड़े हुए, खूनी आँखें चारों ओर देखती हुई कान चौकन्ने—संसार की सब बातों, बाल-बच्चों, देश और राजनीति को भूलकर—शिकारी एक विचित्र प्राणी हो जाता है।

कड़ी चढ़ाई पर मैं इसी दशा में चला जाता था। कभी-कभी रुककर इधर-उधर देखता भी जाता था कि कहीं देवी के वाहन[3] के दर्शन हो जाँय, तो मनोरथ सिद्ध हो जाय। आधी चढ़ाई चढ़ने के उपरांत मैं एक चट्टान के किनारे रुका और गृद्ध दृष्टि से डांडे की चोटी की ओर देखने लगा। एक झाड़ी[4] के आस-पास चिड़ियाँ कुछ विचित्र रूप से चिड़चिड़ा रही थीं। उधर जो देखा तो हृदय की धड़कन एकदम बढ़ गई। सामने तीन सौ गज़ पर झाड़ी के सहारे बाघ खड़ा हुआ दिग्दर्शन कर रहा था और चिड़ियाँ अपनी शक्ति-भर उस पर असंतोष प्रकट कर रही थीं। मेरे पास रायफ़िल न थी—बंदूक थी।

---

१ शरीर के अंदर की नसें। २ चौपायों का चूतड़ या नितंब प्रदेश। ३ देवी का वाहन बाघ। ४ छोटे मोटे पेड़ों का समूह।

रायफ़िल न लाने की मूर्खता पर अपने को हज़ार बार कोसा, क्योंकि बारह नंबर बंदूक की मार इतनी दूर नहीं जाती।

बाघ थोड़ी देर उपरांत[1] अपने शिकार की ओर शाही ठाठ[2] से चला। मैंने अपना मार्ग छोड़कर, कुछ चक्कर काट कर, पहाड़ की चोटी पर पहुँचने की ठानी, जिससे कि बाघ पर बग़ल से, छिपकर, फ़ायर किया जा सके। बाघ मुझ से तीन सौ गज़ ऊपर था। वह पहाड़ के ऊपर से ही अपने शिकार की ओर जा रहा था। मैंने आगे बढ़कर उसके रास्ते में जाना चाहा।

दोनों को एक ही स्थान पर पहुँचना था। जिस प्रकार दो गलियों से और भिन्न दिशाओं से चलकर लोग गलियों के चौराहे पर मिलते हैं और जब तक आमने-सामने नहीं आ जाते, तब तक एक दूसरे को नहीं देख सकते, ठीक इसी प्रकार मैं इस विचार से मोड़ की ओर चला कि कहीं पीछे से पचास-साठ गज़ पर बाघ दिखाई पड़े और अवसर हो तो उसे मारने की चेष्टा करूँ। यह केवल अंदाज़ ही अंदाज़ था। यह स्वप्न में भी विचारा न था कि अंदाज़ इतना ठीक लगेगा।

जूते को उतारकर मैं ऊपर को लपका। जूते इसलिए उतार दिए कि तनिक भी आहट न हो। जब पहाड़ की चोटी का मोड़ पचास-साठ गज़ रह गया, मैं धीरे धीरे एक-एक पैर गिनकर बंदूक की नली बगल में दबाए और हाथ बंदूक के घोड़े पर रक्खे हुए आगे बढ़ा। ख्याल था कि इतनी देर में बाघ मोड़ को पार कर गया होगा, और मैं मोड़ पर पहुँचकर उसके मार्ग को काटकर, छिप कर बैठ जाऊँगा, पर ज्योंही मैं मोड पर शिकारी आसन से पहुँचा, त्योंही दूसरी ओर से बाघ आ गया। मैंने पहले

१ पाश्चत्, बाद। २ शाही ठाठ—राजाओं की-सी गंभीर चाल (Royal gait)

बाघ को देखा। जंगल में स्वतंत्र-रूप से अभिमान के साथ, मस्त चाल से चलते हुए मैंने बाघ को इतने समीप से कभी पहले न देखा था। झुकी हुई अधखुली आँखें, श्वेत दाँतों से कुछ बाहर निकली हुई लाल जीभ और गज़ब के पुट्ठे—ऐसे पुट्ठे जैसे प्रत्येक युवक के होने चाहिएँ—साक्षात् यमराज की मूर्ति मेरे सामने आ गई।

हृदय की धड़कन तो कुछ सैकंडों के लिए न मालूम कितनी तीव्र हो गई। बाघ से मुझे सहसा भय नहीं लगता पर इस आकस्मिक स्वागत के लिए मैं तैयार न था। लौटने का भी समय न था। ऐसे अवसरों पर मनुष्य बुद्धि से काम नहीं ले सकता। ऐसे अवसर उसे बुद्धि-हीन कर देते हैं। सोचने का समय तो घर और सभा-समितियों में ही हुआ करता है। ऐसे अवसर पर मनुष्य की सहायक पशु-बुद्धि ( instinct ) ही होती है, और प्रेरक कोई विशेष शक्ति।

ज्योंही बाघ की दृष्टि मुझपर पड़ी त्योंही वह गर्ज कर पिछले पाँव खड़ा हो गया। बाघ मेरे इतने समीप था कि मैं बंदूक की नाल से उसे छू सकता था। पहले तो मैं काँपा और यह भान हुआ मानों हृदय, नीचे, पैरों की ओर भीतर-ही-भीतर सरक रहा हो। यह आकस्मिक मुठभेड़ का कारण था। बाद को निराशा-जन्य साहस अथवा उद्वेग ने मुझे मृत्यु का सामना करने योग्य ऐसे बना दिया, जैसे हिरन अपने बचाव का कोई उपाय न पाकर, दौड़ना छोड़कर, मारने पर उतारू हो जाता है।

मैंने समझ लिया कि चाहे मैं फायर करूँ अथवा न करूँ—बाघ मुझे मार ही देगा और मेरे मरने की खबर स्त्री, बच्चों, घरवालों और इष्ट-मित्रों को मेरे शरीर की बची-खुची हड्डियाँ और मूक बंदूक देंगी और इस जीवन का अंत—जिसका आदर्श पवित्र देश-सेवा तथा निरीह[1]

१ किसी तरह की उच्च आकांक्षा से रहित।

किसानों का पथ-प्रदर्शक होना बना रक्खा था—इस प्रकार अकेले पहाड़ और पत्थरों में, जो हज़ारों वर्ष से ऐसे ही काण्ड देखते हुए हृदय-हीन हो गए हैं, होगा।

उधर बाघ ने भी समझा कि यह दो पैर का प्राणी काली-काली लोहे की वस्तु लिए उसकी जान के ख़ातिर[1] आया है। उसके खून का प्यासा है। उसके मुँह से ग्रास छीने तो छीने पर उसकी जान का गाहक है। यह दो पैर का जीव इस प्रकार अपमान करके उसे मारने आया है, यह नहीं हो सकता। इस अपमान और धृष्टता का एक ही उत्तर था। और वह यह कि वह अपने शत्रु की हस्ती[2] ही मिटा दे।

इधर मैंने ख्याल किया कि यदि फ़ायर किया तो बाघ गिरते हुए भी एक चोट करेगा और यदि वह मेरे खून को न भी पी सकेगा तो नीचे खड्ड[3] में तो गिरा ही देगा। खड्ड में एक मील नीचे गिरने पर मेरे अंत का पता भी कोई न देगा। इसलिए घोड़ा चढ़ाए खड़ा था कि पहले मैं आक्रमण न करूँगा यदि बाघ मुझ पर झपटा तो फ़ायर करूँगा और आत्म-रक्षा के लिए जो कुछ बन पड़ेगा, करूँगा। बंदीगृह में जब दारा का सिर काटने के लिए औरंगज़ेब के भेजे हुए आदमी आए तो दारा के पास शाक[4] काटने का चाकू था। दारा उसी से लड़ा। तलवार के सामने उसकी कुछ न चली, पर दारा वीर की भाँति लड़ता ही रहा। प्रत्येक युवक का यही कर्तव्य होना चाहिए। इस कर्म-विपाक-विमर्श के लिए न तो समय ही था और न उस समय दिमाग़ ही।

---

१ वास्ते, लिए, लेने के लिए। नोट—'खातिर' स्त्रीलिंग है, इसके साथ 'की' का प्रयोग होना उचित है। 'जान के खातिर' यह प्रयोग विचारणीय है। २ (फ़ा) अस्तित्व, सत्ता। ३ गड्ढा। ४ (संस्कृत) तरकारी।

एक मिनट तक हम दोनों डटे रहे। बाघ गुर्रा रहा था। उसकी आँखों से ज्वाला सी निकल रही थी। न मैंने फ़ायर किया, न उसने आक्रमण। यह एक मिनट एक युग के समान था। अंत में बाघ एकदम मुड़कर भागा। ज्योंही वह मुड़ा, मैंने समझा कि बस मेरे ऊपर आया। बंदूक दाग ही तो दी। जंगल गूँज गया। गोली बाघ के पेट में लगी। मैंने बाघ को गिरते देखा। बंदूक छोड़ मैं नीचे को दौड़ा. पर गिरकर लुढ़कने लगा। जिस बात का डर था, वही हुई। खड्ड की ओर मैं फुटबाल की भाँति ढरकने लगा। चालीस-पचास गज़ लुढ़का हूँगा कि हृदय दहलानेवाली बाघ की गरजन कान पर मालूम हुई।

मौत के अनेक बहाने होते हैं और जीवन-रक्षा के अनेक सहारे। यदि जीवन होता है तो मनुष्य पहाड़ की चोटी से गिरकर बच जाता है और मरने के लिए सीढ़ियों से गिरना ही काफ़ी है*। मुझे बचना था। भगवान् को यही मंजूर था कि मैं बचा रहूँ। सामने खड्ड की ओर तेज़ी के साथ लुढ़कने के मार्ग में एक चीड़ का वृक्ष था। होश-हवाश तो था ही। आठ-दस गज़ से ऊपर से, पेड देख लिया। उसी ओर जाने के लिए हाथ-पैर पीटे और उस पेड़ से आकर टकराया। पीछे से बाघ के घसिटने की सरसराहट हो रही थी। पेड़ से ठोकर खाकर रुका, झटपट ऊपर चढ़ा। इतने ही में विद्युत् गतिसे बाघ भी आ गया। उसने उचककर[1] मुझपर पंजा मारा। उसके पंजे में मेरा नैकर § आ गया। नैकर फट गया

* लगभग इसी अर्थ का एक संस्कृत श्लोक है—अरक्षितं तिष्ठति दैव-रक्षितं सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति। जीवत्यनाथोपि वने विसर्जितः कृतप्रयत्नोपि गृहे विनश्यति।

१ पैर के पंजो के बल पर खड़ा होना।

§ "निक्कर" (Knicker)

और मैं ऊपर निकल गया। बाघ की कमर टूट गयी थी इसीलिए वह पेड़-पर न चढ़ सका।

पेड़ पर ऊपर बैठकर मैंने दम ली और तब चोट और खून की ओर ध्यान गया। पेड़ के नीचे बाघ पड़ा हुआ अंतिम श्वास ले रहा था।

रात्रि के नौ बजे तक जाड़े में उस पेड़ पर टँगा रहा। 'लक्ष्मीदत्तजी ने आठ बजे तक प्रतीक्षा की और वह भी इसलिए कि शिकारी और भिखारी का कुछ ठिकाना नहीं कि कहाँ जा निकलें। छः बजे नहीं तो सात बजे तक मुझे पहुँचना चाहिए था। इसलिए चिंतित होकर एक लालटेन और दो आदमियों को लेकर वे मेरी खोज में निकले और नौ बजे मुझे पेड़ पर टँगा पाया और बाघ को नीचे मरा हुआ देखा। बड़ी कठिनता से मुझे उतारा। बंदूक की तलाशी प्रातःकाल के लिए छोड़ी गई। उस बूढ़े ने बाघ के न मालूम कितनी लातें मारीं और उसके बाप-दादों को गालियों से कोसा।

घर लौटकर थोड़ी-बहुत सेंक-साँक की[1], गुड़ के साथ दूध पिया। गृहिणी ने उस दिन ऐसी सेवा की मानों मुझे बाघ ने घायल कर दिया हो। अगले दिन लक्ष्मीदत्त जी और मैंने दूसरे बाघ को मारा; लक्ष्मीदत्तजी ने विकट साहस दिखाया था—घायल होकर भी बाघ को मार दिया।

## अभ्यास

१. संक्षेप में बाघ के शिकार का वर्णन करो।

२. अर्थ समझाओ—विद्युत्गति, गज़ब ढाना, दिग्दर्शन करना, हस्ती मिटाना, हाथ पैर पीटना, शाही ठाठ से चलना, अंतिम श्वास-लेना, सेंक-साँक करना, थके माँदे, होश हवाश।

---

१ आग के सामने हाथ पैरों को गरम किया।

३. (क) समास किसे कहते है ? उसके कितने भेद हैं ?

(ख) इनका विग्रह करते हुए समास लिखो—उदर-पूर्ति, कर्म-विपाक-विमर्श, निराशाजन्य, जीवन-संग्राम-समस्या, बन-बीहड़-सहचरी, नीलमेघश्याम, कोदंडपाणि, हाथ-पैर, रूपोद्यान।

४. नीचे-लिखे वाक्यों का विश्लेषण करो—

(अ) संसार में जीवन-संग्राम-समस्या.....उड़ रही थी (पृ० ३९)

(आ) यह दो पैर का प्राणी.....हस्ती ही मिटा दे (पृ० ४५)

(इ) मौत के अनेक बहाने.....पेड़ से आकर टकराया (पृ० ४६)

५. हिंदी में सर्वनाम कितने प्रकार के हैं ? उदाहरण दो।

# ७. आत्म-बल

लेखक—रामचंद्रजी शुक्ल

[ आचार्य रामचंद्रजी शुक्ल का जन्म सं० १९४१ (सन् १८८४) आश्विन की पूर्णिमा को अगोना नामक गाँव में हुआ। शुक्लजी हिंदी साहित्य के प्रकांड पंडित, अनूठे लेखक, प्रतिभाशाली कवि तथा निष्पक्ष समालोचक थे। फुटकर निबंधों तथा कविताओं के अतिरिक्त आपके लिखित, अनुवादित, संपादित और संग्रहीत अनेक ग्रंथ हैं। आप के सभी ग्रंथ गंभीर, विचारशील, मौलिक एवं विद्वत्तापूर्ण हैं। आपकी भाषा संयत, परिष्कृत, प्रौढ़ तथा विशुद्ध है। आपने सूर, तुलसी और जायसी की रचनाओं का योग्यता-पूर्वक संपादन कर उनपर गवेषणापूर्ण मार्मिक समालोचनाएँ लिखी हैं। हिंदी-साहित्य-संसार में आप का नाम विशेषत: उत्तम समालोचक के रूप में अमर है।

निबंध-लेखकों में भी आपका कोई कम स्थान नहीं है। इनके लेखों में बिलकुल इनके निजी विचार रहते हैं। हिंदी की उच्च शिक्षा के लिए वे बड़े काम के हैं। आप के मुख्य मुख्य निबंध 'चिंतामणि' (दो भागों) में संगृहीत हैं। 'आत्मबल' आप का एक छोटा-सा निबंध है। ]

विद्वानों का यह कथन बहुत ठीक है कि **नम्रता ही स्वतंत्रता की धात्री[1] एवं माता है**। युवा पुरुष को यह सदा स्मरण रखना चाहिए कि वह बहुत कम बातें जानता है, अपने ही आदर्श से वह बहुत नीचे है, और उसकी आकांक्षाएँ उसकी योग्यता से कहीं बढ़ी हुई हैं। उसे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह अपने बड़ों का सम्मान करे, छोटों और

१ लालन-पालन करनेवाली, दाई (यह धाता(संस्कृत) का स्त्रीलिंग रूप है)।

बराबर वालों से कोमलता का व्यवहार करे। ये बातें आत्म-मर्यादा के लिए आवश्यक हैं। यह सारा संसार जो कुछ हम हैं और जो कुछ हमारा है—हमारा शरीर, हमारी आत्मा, हमारे कर्म, हमारे भोग, हमारी घर की और बाहर की दशा, हमारे बहुत से अवगुण और थोड़े से गुण सब इसी बात की आवश्यकता प्रकट करते हैं कि हमें अपनी आत्मा को नम्र रखना चाहिए। नम्रता से मेरा अभिप्राय दब्बूपन[1] से नहीं है जिसके कारण बात-बात में मनुष्य दूसरों का मुँह ताकता[2] रहता है, जिससे उसका संकल्प क्षीण और उसकी प्रज्ञा मंद हो जाती है, जिसके कारण वह आगे बढ़ने के समय भी पीछे रहता है और अवसर पड़ने पर चटपट किसी बात का निर्णय नहीं कर सकता। मनुष्य का बेड़ा[3] अपने ही हाथ में है, उसे चाहे वह जिधर लगावे। सच्ची आत्मा वही है जो प्रत्येक दशा में, प्रत्येक स्थिति के बीच, अपनी राह आप निकालती है।

अब तुम्हें क्या करना चाहिए, इसका ठीक-ठीक उत्तर तुम्हीं को देना होगा, दूसरा कोई नहीं दे सकता। कैसा भी विश्वास-पात्र मित्र हो, तुम्हारे इस काम को वह अपने ऊपर नहीं ले सकता। हम अनुभवी लोगों की बातों को आदर के साथ सुनें, बुद्धिमानों की सलाह कृतज्ञतापूर्वक मानें, पर इस बात को निश्चित समझ कर कि हमारे कामों से ही हमारी रक्षा वा[4] हमारा पतन होगा हमें अपने विचार और निर्णय की स्वतंत्रता को दृढ़तापूर्वक बनाए रखना चाहिए। अपने व्यवहार में कोमल रहो और अपने उद्देश्यों को उच्च रक्खो, इस प्रकार नम्र

---

१ हमेशा दबकर रहने की प्रवृत्ति। २ (मुहा०) असहाय होकर दूसरों का मुँह देखना। ३ एक तरह की छोटी नाव। ४ (फ़ा) और, संस्कृत शब्द 'वा' (अथवा) से इसका भेद याद रखना चाहिए।

और उच्चाशय दोनों बनो। अपने मन को कभी मरा हुआ न रक्खो। जितना ही जो मनुष्य अपना लक्ष्य ऊपर रखता है, उतना ही उसका तीर ऊपर जाता है। संसार में ऐसे-ऐसे दृढ़चित्त पुरुष हो गए हैं जिन्होंने मरते दम तक सत्य की टेक[1] नहीं छोड़ी, अपनी आत्मा के विरुद्ध कोई काम नहीं किया। राजा हरिश्चन्द्र के ऊपर इतनी विपत्तियाँ आईं, पर उन्होंने अपना सत्य नहीं छोड़ा। उनकी प्रतिज्ञा यही रही—

चंद्र टरै,[2] सूरज टरै, टरै जगत् व्यवहार।
पै[3] दृढ़ श्री हरिचंद्र को,[4] टरै न सत्य विचार॥ *

महाराणा प्रतापसिंह जंगल-जंगल मारे-मारे फिरते थे, अपनी स्त्री और बच्चों को भूख से पीड़ित देखते थे, पर उन्होंने उन लोगों की बात न मानी जिन्होंने उन्हें अधीनतापूर्वक संधि करने की सम्मति दी, क्योंकि वे जानते थे कि अपनी मर्य्यादा की चिंता जितनी अपने को हो सकती है, उतनी दूसरे को नहीं। हक़ीक़तराय नामक वीर बालक को देखो जिसने जल्लाद[5] की चमकती तलवार गरदन पर देख कर भी क़ाजी के सामने धर्म्म-परित्याग करना स्वीकार नहीं किया। सिक्खगुरू गोविंदसिंह के दोनों लड़के जीते जी दीवार में चुन[6] दिए गए, पर वे अपना धर्म्म छोड़ कर दूसरे का धर्म स्वीकार करने के नाम

१ हठ, जिद। २ टले, पथभ्रष्ट हो जावे। प्राचीन हिंदी में लकार के स्थान में रकार आता है, 'रलयोरभेद:'। ३ पर, परन्तु। ४ एक प्राचीन हिंदी-प्रत्यय जिसका प्रयोग 'का-के-की' के अर्थ में होता है। ५ प्राणदंड पाए हुए अपराधियों का वध करनेवाला, घातक, वधक। ६ दीवार में चुनना (मुहा०) किसी को खड़ा करके जीते जी उसके ऊपर ईंटें जोड़ देना।

*यह छंद भारतेंदु हरिश्चंद्र के सत्य हरिश्चंद्र नाटक से लिया गया है।

पर 'नहीं', 'नहीं' कहते रहे। मैं निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि जो युवा पुरुष सब बातों में दूसरों का सहारा चाहते हैं, जो सदा एक न एक नया अगुआ[1] ढूँढा करते हैं और उसके अनुयायी बना करते हैं, वे आत्म-संस्कार के कार्य में उन्नति नहीं कर सकते। उन्हें स्वयं विचार करना, अपनी सम्मति आप स्थिर करना, दूसरों की उचित बातों का मूल्य समझते हुए भी उनका अंध भक्त न होना सीखना चाहिए। तुलसीदासजी को लोक में जो इतनी सर्वप्रियता और कीर्ति प्राप्त हुई, उनका दीर्घ जीवन जो इतना महत्त्वमय और शांतिमय रहा, सब इसी मानसिक स्वतंत्रता, निर्द्वन्दता और आत्म-निर्भरता के कारण। एक इतिहासकार कहता है—"प्रत्येक मनुष्य का भाग्य उसके हाथ में है। प्रत्येक मनुष्य अपना जीवन-निर्वाह श्रेष्ठ रीति से कर सकता है। यही मैंने किया है और यदि अवसर मिले तो फिर यही करूँ।" इसे चाहे स्वतंत्रता कहो, चाहे आत्मनिर्भरता कहो, चाहे स्वावलंबन कहो जो कुछ कहो, यह वही भाव है जिससे मनुष्य और दास में भेद जान पड़ता है। यह वही भाव है जिसकी प्रेरणा से राम-लक्ष्मण ने घर से निकल बड़े पराक्रमी वीरों पर विजय प्राप्त की, यह वही भाव है जिसकी प्रेरणा से हनुमान् ने अकेले सीता की खोज की, यह वही भाव है जिसकी प्रेरणा से कोलंबस ने अमेरिका इतना बड़ा महाद्वीप ढूँढ़ निकाला। चित्त की इसी वृत्ति के बल पर सूरदास ने अकबर के बुलाने पर फ़तेहपुर सीकरी[2] जाने से इनकार किया था और कहा था—"कहा मोको सीकरी सों काम?"[3]

इस चित्त-वृत्ति के बल से मनुष्य इसलिए परिश्रम के साथ दिन काटता और दरिद्रता के दुःख को झेलता है जिसमें उसे ज्ञान के

१ अग्रगामी, नायक, 'लीडर'। २ आगरे के पास की एक इतिहास-प्रसिद्ध जगह। ३ मुझे फ़तेहपुर सिकरी से क्या प्रयोजन है? कहा=क्या। मोको=मुझ को। सों=से।

अमित भांडार में से कुछ थोड़ा बहुत मिल जाय। इसी चित्तवृत्ति के प्रभाव से हम प्रलोभनों का निवारण करके उन्हें पद-दलित करते हैं, कुमंत्रणाओं का तिरस्कार करते हैं और शुद्ध-चरित्र के लोगों से प्रेम और उनकी रक्षा करते हैं। इसी चित्तवृत्ति के प्रभाव से युवा पुरुष कार्यालयों में शांत और सच्चे रह सकते हैं और उन लोगों की बातों में नहीं आ सकते जो आप अपनी मर्य्यादा खोकर दूसरों को भी अपने साथ बुराई के गड्ढे में गिराना चाहते हैं। इसी चित्तवृत्ति के प्रताप से बड़े-बड़े लोग ऐसे समय में भी, जब कि उनके और साथियों ने उनका साथ छोड़ दिया है, अपने महत्कार्यों में अग्रसर होते गए हैं और यह सिद्ध करने में समर्थ हुए हैं कि निपुण, उत्साही और परिश्रमी पुरुषों के लिए कोई अड़चन ऐसी नहीं जो कहे कि 'बस यहीं तक, और आगे न बढ़ना।' चित्तवृत्ति की दृढ़ता के सहारे दरिद्र लोग दरिद्रता से और अपढ़ लोग अज्ञता से निकल कर उन्नत हुए हैं तथा उद्योगी और अध्यवसायी[1] लोगों ने अपनी समृद्धि का मार्ग निकाला है। इसी चित्तवृत्ति के अवलंबन से पुरुषसिंहों को यह कहने की क्षमता हुई है कि "मैं राह ढूँढूँगा या राह निकालूँगा।" यही चित्तवृत्ति थी जिसकी उत्तेजना से शिवाजी ने थोड़े-से वीर मरहटे सिपाहियों को लेकर शत्रुओं की बड़ी भारी सेना पर छापा मारा[2] और उसे तितर-बितर[3] कर दिया। यही चित्तवृत्ति थी जिसके सहारे से एकलव्य बिना किसी गुरू या संगी-साथी के जंगल के बीच निशाने पर तीर पर तीर चलाता रहा और अन्त में एक बड़ा धनुर्धर हुआ। यही चित्तवृत्ति है जो मनुष्य को सामान्य जनों से उच्च बनाती है, उसके जीवन को सार्थक और उद्देश्यपूर्ण करती है तथा उसे उत्तम संस्कारों के ग्रहण करने के योग्य

१ लगातार उद्योग करनेवाले, उद्योगी। २ छापा मारना (मुहा०)—आक्रमण करना। ३ तहस-नहस, नष्ट-भ्रष्ट।

बनाती है। जिस मनुष्य की बुद्धि और चतुराई उसके दृढ़ हृदय के ही आश्रय पर स्थित रहती है, वह जीवन और कर्मक्षेत्र में स्वयं भी श्रेष्ठ और उत्तम रहता है, और दूसरों को भी श्रेष्ठ और उत्तम बनाता है। प्रसिद्ध उपन्यासकार स्कॉट[1] एक बार ऋण के बोझ से बिलकुल दब गया। उसके मित्रों ने उसकी सहायता करनी चाही, पर उसने यह बात स्वीकार नहीं की और स्वयं अपनी प्रतिभा का ही सहारा लेकर अनेक उपन्यास थोड़े दिनों के बीच लिख कर लाखों रुपए का ऋण उसने सिर पर से उतार दिया।

---

१ **सर वाल्टर स्कॉट** (सन् १७७१–१८३२) अंग्रेजी साहित्य का एक महाकवि और अत्यंत ख्यातिमान् उपन्यासकार था। सन् १८१४ में इसका पहला उपन्यास 'वेवर्ली' निकला जो इतना जनप्रिय हो गया कि 'वेवर्ली नावेल्स' नाम से एक उपन्यास माला ही बराबर उसकी मृत्यु (१८३२) तक निकलती रही। किसी समय स्कॉट की वार्षिक आय १५ से २० हजार पौंड तक थी। इस समय उसने एक बड़ी भू-संपत्ति (एस्टेट) खरीद ली, और उसमें (Tweed) नदी के किनारे एक बढ़िया मकान 'एबट्सफ़र्ड' बनवाया जो आने जाने वाले अतिथियों के लिए मशहूर हो गया। १८२६ तक तो उसकी मेहमानी की धाक खूब रही जब उसके प्रकाशक रिक्त (bankrupt) हो गये और १,१७,००० पौंड के ऋण का भार उस के सिर पर मढ़ा। स्कॉट दिन-रात बैठकर अथक परिश्रम से उपन्यास के बाद उपन्यास लिखने लगा जिनकी बिक्री से ऋण का बहुत कुछ भाग चुकाया गया। जो कुछ बचा था वह उसकी मृत्यु के बाद उसके ग्रंथों की आय से अदा किया गया।

## अभ्यास

१. आत्मबल की व्याख्या करते हुए सिद्ध करो कि कोई व्यक्ति उसके बिना अग्रगामी नहीं हो सकता।

२. निम्नलिखित उद्धरण क्यों लिए गए हैं, समझाओ-

(क) चंद्र टरै, सूरज.....विचार (पृ० ५१)। (ख) कहा मोको.....काम ? (पृ० ५२)। (ग) प्रत्येक मनुष्य का भाग्य..... यही करूँ (पृ० ५२)।

लघु टिप्पणियाँ लिखो—हक़ीक़तराय, एकलव्य, फतेहपुर सीकरी, स्काट।

४. (अ) हिंदी में लिंग-निर्णय किस आधार पर होता है ? उदाहरण और अपवाद बताओ।

(आ) लिंग बदलो—धात्री, बुद्धिमान्, लोग, साथी, साधु।

५. अधोनिर्दिष्ट मुहाविरों का अर्थ समझाकर सरल वाक्यों में प्रयोग करो—मँह ताकना, मारा-मारा फिरना, छापा मारना, दीवार में चुनना।

# ८. बृटिश म्यूज़ियम

लेखक—डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी

[ डा० त्रिपाठीजी प्रयाग के निवासी हैं और विश्वविद्यालय में इतिहास के अध्यापक हैं। आप इतिहास एवं हिंदी साहित्य के अच्छे विद्वान् हैं। आपके लिखित तथा संपादित अनेक ग्रंथ हैं।

प्रस्तुत पाठ आपका एक विवरणात्मक लेख है। इसमें आपने बृटिश म्यूज़ियम का जीता-जागता वर्णन करते हुए कई ऐसी बातों का समावेश किया है जिनसे हम अपने पुस्तकालयों के लिए यथेष्ट लाभ उठा सकते हैं।]

संसार में जब से लिखने-पढ़ने का सूत्रपात[1] हुआ है तब ही से पुस्तकों और लेखों का महात्म्य[2] आरम्भ हो गया। विद्या-प्रेमी पुस्तकों का संचय करने और उनको अत्यन्त श्रद्धा-पूर्वक रखने लगे। राजाओं और धनिकों ने भी क्रमशः पुस्तकें एकत्रित करना आरम्भ कर दिया। उन्होंने अपने निजी पुस्तकालयों का संस्थापन किया अथवा धर्मालयों, मन्दिरों, विद्यालयों, मस्जिदों और मदरसों में पुस्तकों का संग्रह कर दिया। जब-जब यूरोप में जातीयता के भाव का उदय हुआ और जात्याभिमान की लहरें उठने लगीं तब-तब वहाँ की प्रत्येक जाति को अपने जातीय पुस्तक-भंडार के निर्माण की धुन[3] लग गई। फल यह हुआ कि आज यूरोप, अमेरिका के प्रत्येकदेश में जातीय पुस्तकालय, चित्रालय, कला-भवन एवं वैज्ञानिक संग्रहालय पाये जाते हैं। आधुनिक जातीय पुस्तकालयों और

---

१ प्रारंभ। २ यह 'माहात्म्य' का अशुद्ध रूप है, इसका अर्थ होता है—बड़ाई, महिमा। ३ चिंता, लगन।

संग्रहालयों में किसी विशेष भाव, धर्म, समुदाय या विषय के ग्रंथ नहीं, किन्तु सब प्रकार के ग्रंथों का मुक्त हृदय से संग्रह किया जाता है। विशेषतः अपनी भाषा, कला, हस्त-लिखित ग्रन्थों और पात्रों का संचय हर एक जाति अपने पुस्तकालय में करना चाहती है। अच्छे, बुरे, असाधारण अथवा साधारण किसी भी विषय के मुद्रित ग्रंथों के संग्रह करने में उन्हें संकोच नहीं होता। वह सबको अपने विशाल वक्षःस्थल में स्थान देने के लिए उद्यत हैं।

इस लेख में लंदन के ब्रिटिश म्यूज़ियम का दिग्दर्शन कराना चाहता हूँ। इंगलैंड ही नहीं वरन् ब्रिटिश साम्राज्य का सबसे बड़ा पुस्तकालय ब्रिटिश म्यूज़ियम है। कुछ अंशों में उसकी समानता करनेवाला संसार में अन्य कोई संग्रहालय नहीं। म्यूज़ियम का आरम्भ सन् १७५२ में सर हेन्स स्लोन के संग्रह से हुआ। उस साल एक ऐक्ट पास हुआ जिससे कि म्यूज़ियम के संस्थापन और उसके उद्देश्य की घोषणा की गई। मुख्य उद्देश्य यह था कि सब कलाओं से सम्बन्ध रखनेवाली सामग्री का एक स्थान पर संग्रह कर दिया जाय क्योंकि उनका आपस में अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। ऐसे संग्रह से विज्ञान और अनुभव की वृद्धि होने की अधिक सम्भावना है। म्यूज़ियम बनाने एवं स्लोन साहब के संग्रह को खरीदने के लिये तीन लाख पाउण्ड की लाटरी डाली गई। पचास हज़ार टिकट बेचे गए। इनाम की रकम दस से एक हज़ार पाउण्ड तक रक्खी गई। यह तरकीब[1] काफी कारगर[2] हुई।

स्लोन के संग्रह के अलावा द्वितीय और तृतीय जार्जों ने भी अपना राजकीय-संग्रह म्यूज़ियम को दे दिया। तदनन्तर अनेक महानुभावों ने धन से अथवा पुस्तकों आदि से म्यूज़ियम की श्रीवृद्धि की। म्यूज़ियम ने स्वयं

१ उपाय। २ सफल, प्रभावजनक।

बहुत से पुस्तकालयों और संग्रहों को अच्छे दामों पर ख़रीद कर अपना भाण्डार भर लिया।

सन् १७५६ में म्यूज़ियम जनता के लिए खोल दिया गया। सुन कर आश्चर्य होगा कि पहले छः महीनों में केवल पाँच पढ़नेवालों ने ही कृपा की। कितने ही वर्षों तक पढ़नेवालों की संख्या शोचनीय ही रही। चौंसठ वर्ष तक पढ़नेवालों की संख्या प्रतिदिन पचास से सत्तर के बीच में ही रही, किन्तु आज चार सौ से अधिक पाठकों और सैकड़ों दर्शकों की भीड़ लगती है।

बृटिश म्यूज़ियम में चालीस लाख के लगभग मुद्रित ग्रंथ हैं। प्रति वर्ष क़रीब पचास हज़ार पुस्तकें बढ़ती जाती है। पुस्तकों का सूची-पत्र चार सौ चौतीस जिल्दों[1] में है। यदि उन आलमारियों को जिनमें मुद्रित ग्रंथ रक्खे हैं एक कतार[2] में सजाया जाय तो उसकी लम्बाई कई मील तक पहुँचेगी। पश्चिमी भाषाओं की हस्तलिखित पुस्तकों का संग्रह भी अपूर्व है। उसमें चौवन हज़ार हस्तलिखित ग्रंथ और पच्चीस हज़ार सरकारी एवं अन्यान्य पत्र आदि हैं। अठारह हज़ार मुद्राओं और सत्ताईस सौ ग्रीक और लैटिन के प्राचीन लेखों का संग्रह है। इंगलैंड के सुविख्यात साहित्य-सेवियों के हस्तलिखित ग्रंथ, उनकी दस्तखतों के सहित वहाँ पर जनता के अवलोकनार्थ रक्खे हुए हैं। बेकन[3], मिल्टन[4]

---

१ भाग ( volume )। २ पांक्ति ( लाइन )।

३ **सर फ्रांसिस बेकन** (सन् १५६१–१६२६) एक बड़ा साहित्य-सेवी और तत्त्ववेत्ता है। उसके निबंध (essays) बहुत प्रसिद्ध हैं।

४ **जॉन मिल्टन** ( सन् १६०८–१६७४ ) बहुत मशहूर कवि है। अंग्रेजी साहित्य में शेक्सपिअर के बाद इसी का नाम आता है। इसका महाकाव्य 'पेरडाइस लॉस्ट' अंग्रेजी का अमर ग्रंथ है।

ज़ॉनसन[1] और गिबन[2] आदि सभी लेखकों के लिखे हुए ग्रंथ और पत्र आदि यहाँ पर सजे हुए हैं। पुस्तकस्थ चित्रों के भी वहाँ गौरवपूर्ण संग्रह हैं। बारह सौ वर्ष तक के पुराने पुस्तकस्थ चित्रों को आप वहाँ देख सकते हैं।

प्राच्य-विभाग में हेबरु, चीनी, जापानी, तिब्बती, अरबी, फ़ारसी, संस्कृत, पाली और भारतीय भाषाओं के मुद्रित और हस्तलिखित ग्रंथों का संग्रह है। उसमें एक लाख बीस हज़ार के लगभग मुद्रित और करीब सोलह हज़ार के हस्तलिखित ग्रंथों का भाण्डार है।

मिश्र[3]-विभाग में प्राचीन मिश्र के बहुत पुराने लेखों का अच्छा संग्रह है। ईसा से आठ सौ वर्ष पहले असीरियन के राजा सारगन ने जिस संग्रह की नींव नेनीवा में डाली थी और जिसका संवर्द्धन उसके वंशजों ने किया था, वह आज बृटिश म्यूज़ियम की शोभा बढ़ा रहा है। बेबीलोनियन संग्रह में सबसे प्राचीन लेख ईसा से सत्ताईस सौ पचास वर्ष पूर्व का है। ईसा के पूर्व दो सहस्र वर्ष से छः सौ बयालीस वर्ष का शिलाओं पर खुदा हुआ असीरियन का इतिहास म्यूज़ियम में है। वह वहाँ के संग्रह का एक समुज्वल रत्न समझा जाता है।

---

१ डाक्टर सैम्युएल जॉनसन ( सन् १७०९–१७८४ ) बहुत बड़ा विद्वान और समालोचक था। इसी ने सब से पहले अंगरेजी कोश लिखा था।

२. एडवर्ड गिबन ( १७३७–१७९४ ) एक बड़ा इतिहास-लेखक था। इसका 'रोम साम्राज्य की अवनति और नाश का इतिहास' (Histoty of the Decline and Downfall of the Roman Empire. ) आज तक अपना एक विशेष स्थान रखता है।

३ ईजिप्ट ( egypt )

ब्रिटिश म्यूज़ियम में केवल पुस्तक ही नहीं हैं वरन् सभ्यता के अध्ययन से अन्यान्य साधन भी वहाँ उपस्थित हैं। मिश्र के प्राचीन शिल्पकला और अन्य कलाकौशल के बड़े मनोहर नमूने वहाँ संगृहीत हैं। वहाँ प्राचीन मिश्र, यूनान, रोम, सुमेरिया, सीरिया, पैलेस्टाइन, प्राचीन अमेरिका और आफ्रिका आदि देशों के निवासियों के कला-कौशल की द्योतक वस्तुओं का अपूर्व संग्रह है। गांधार शिल्पकला का वहाँ आश्चर्यजनक संग्रह है। बर्मा की कारीगरी के भी बड़े सुन्दर नमूने वहाँ देखने में आते हैं। प्राचीन सभ्यता के प्रदर्शक मिट्टी के बर्तन, जेवरात[1], बरेत[2] चीजें आदि का संग्रह है।

म्यूज़ियम में प्राचीन सिक्कों और मुद्राओं का अपूर्व और सुसम्पन्न कोष है। अनेक देशों के वहाँ सिक्के हैं। मैंने मध्य एशिया, फारस और भारत के सिक्के देखे। हिन्दू-काल और मुसलमानों के जमाने के चाँदी सोने के सिक्कों का संग्रह देखकर मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ।

यदि कोई महीनों तक देखा-भाली करता रहे तो सम्भव है कि वह ब्रिटिश म्यूज़ियम के संग्रह का कुछ ओर छोर पा सके। उसके एक विभाग के देखने के लिए ही हफ्तों की ज़रूरत है। उसके अनुपम संग्रह से लाभ उठाने के लिए जापान, चीन, आस्ट्रेलिया, मिश्र, अमेरिका आदि दूर-दूर देशों के विद्यार्थी और निरीक्षक[3] आते हैं।

यदि आप रीडिंगरूम में जाकर कुछ दिन काम करें तो आपको अनुभव हो जावेगा कि वहाँ प्रबंध कितना अच्छा है। रीडिंगरूम का निर्माण सन् १८५६-५७ में हुआ था। उसमें पाँच सौ आदमियों के बैठकर काम करने का प्रबंध है। रीडिंगरूम के बीच में गोल चबूतरा है

---

१ गहने। २ रुपया, पैसा, मोहर आदि। ३ प्रेक्षक, देखनेवाले।

जिस पर वहाँ के कर्मचारी बैठते हैं। चबूतरे के नीचे चारों ओर गोल छोटी आलमारियाँ रक्खी हैं जिनमें सूचीपत्र की जिल्दें भरी हुई हैं। उन आलमारियों को गोलाकर कल्पना करके आप उनके चारों ओर किरणों की कल्पना कीजिये। यह किरणें मेज़ों की हैं जिन पर नर्म आयल-क्लाथ मढ़ा हुआ है। हर एक मेज़ पर तीन-चार बिजली के लैम्प पढ़ने के लिए रक्खे हुए हैं। हर एक सीट में दावातों में रोशनाई भरी हुई है। बैठने के लिए गद्देदार,[1] पहियेवाली कुर्सियाँ रक्खी हैं।

रीडिंग रूम में साधारण काम की चुनी हुई कोई बीस सहस्र पुस्तकें हैं। इन पुस्तकों का चुनाव बड़ी सावधानी के साथ किया गया है। नीचे से ऊपर तक चारों ओर किताबें गोलाकार सजी हुई हैं। पाठक लोग बिना रोक-टोक के रीडिंगरूम के ग्रंथों को उठाते रखते और पढ़ते हैं। यदि आप यह कष्ट नहीं उठाना चाहते तो आप टिकटपर जिस ग्रंथ को देखना चाहते हैं, उसका नाम लिख कर टिकट-बक्स में डाल दीजिये, पन्द्रह मिनट के अंदर ही पुस्तक आपके पास आ जायगी।

रीडिंगरूम सवेरे नौ बजे से छः बजे शाम तक खुला रहता है। उसमें जाने के लिए डाइरेक्टर की लिखी हुई आज्ञा लेनी पड़ती है। डाइरेक्टर आपको टिकट भेज देता है जिस पर लिखा होता है कि अमुक व्यक्ति को इतने दिनों तक पढ़ने की आज्ञा दी जाती है। एक दिन से छः महीने तक पढ़ने की आज्ञा प्रायः मिलती है। म्यूज़ियम की पुस्तकें वहाँ से बाहर नहीं जाने पातीं।

यदि आप बहुमूल्य अथवा दुर्लभ ग्रंथ को देखना चाहते हैं तो आप उत्तर के वाचनालय में जाइए, प्राच्य विद्या-सम्बन्धी ग्रंथों के लिए

१ 'कुशन' वाली, जिनमें रुई भरी हो।

ओरियन्टल-रूम में जाइए। ओरियन्टल-रूम में जाने के लिए आपको दूसरा टिकट लेना पड़ेगा। पत्र-पत्रिकाओं एवं समाचार-पत्रों का संग्रह न्यूज़पेपर रूम में है। ओरियन्टल-विभाग के लिए तो पृथक् टिकट की आवश्यकता पड़ती है, किन्तु अन्य सब विभागों में आप रीडिंगरूम के टिकट से ही आ जा सकते हैं। ओरियन्टल-विभाग पाँच बजे शाम को बन्द हो जाता है। रविवार को छोड़कर म्यूज़ियम साल भर में सात-आठ दिन से अधिक नहीं बन्द रहता।

सबसे अच्छी बात यह है कि म्यूज़ियम में जनता के लाभ के लिए अनेक विषयों पर व्याख्यान होते हैं। किसी दिन मिश्र विभाग में, कभी रोमन या बृटिश-विभाग में कभी असीरियन या अन्यविभाग में व्याख्यान होते हैं। व्याख्यानों का विषय प्रायः म्यूज़ियम के संग्रह से सम्बन्ध रखता है। विषय, स्थान, समय और व्याख्यानदाताओं के नाम आदि की सूचना समाचार-पत्रों में नोटिसों द्वारा और म्यूज़ियम के बोर्ड पर हफ्ते पहले से दे दी जाती है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि म्यूज़ियम के प्रत्येक विभाग का संरक्षक अपने विषय का पारङ्गत होता है। वह श्रोताओं को लेकर व्याख्यान-सम्बन्धी विशेष संग्रहालय में ले जाकर वस्तुओं को दिखलाता और विषय में सुगम रीति से श्रोताओं को जानने योग्य बातें बतलाता है। प्रश्नोत्तर में भी उसे सङ्कोच नहीं होता। इस प्रकार प्रति वर्ष अगणित दर्शकों को अनायास बहुत सा ज्ञान प्राप्त हो जाता है। विद्या-प्रचार का यह एक अच्छा साधन है।

यदि म्यूज़ियम के प्रत्येक विभाग का विस्तृत वर्णन किया जाय तो एक बृहदग्रंथ हो सकता है। म्यूज़ियम को अन्यजातीय पुस्तकालयों और संग्रहालयों की तरह सरस्वती देवी का मन्दिर कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। शारदा के उपासकों की टोलियाँ, धर्म, जाति, सम्प्रदाय, देश, रङ्ग, रू

आदि के भावों को छोड़ कर श्रद्धापूर्वक वहाँ प्रतिदिन जमा होती हैं। उसमें अखण्ड ज्ञान-यज्ञ और विज्ञान का सतत अनुष्ठान होता रहता है। उससे या तद्वत् अन्य संस्थाओं से जो सार्वजनिक लाभ, ज्ञान और विज्ञान की जो श्रीवृद्धि हो रही है, उसका ठीक अनुमान वे ही कर सकते हैं, जो विद्या के अनन्त सागर के श्रद्धालु यात्री हैं।

बृटिश म्यूज़ियम और उसकी शाखा के प्रबन्ध के लिए बृटिश सरकार चालीस लाख रुपये से अधिक वार्षिक खर्च करती है। यह व्यय यहाँ के सब पुस्तकालयों और संग्रहालयों पर मिला कर जो खर्च होता है, उससे दुगुने के करीब है। स्मरण रखना चाहिए कि लंदन में बृटिश म्यूज़ियम ही एक मात्र पुस्तकालय और संग्रहालय नहीं, वहाँ और आयर्लैंड में अनेक पुस्तकालय और संग्रहालय हैं उनमें से कई संस्थाओं का भरण और पोषण वहाँ की सरकार करती है। दूसरी स्मरणीय बात यह है कि कापीराइट ऐक्ट की सहायता से प्रति वर्ष सहस्रों पुस्तकें म्यूज़ियम को मुफ्त मिलती हैं, और क़ीमती चीज़ों के खरीदने के लिए अलग से धन प्रदान किया जाता है। कुछ आश्चर्य नहीं कि म्यूज़ियम का भाण्डार उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है।

## अभ्यास

१. बृटिश म्यूज़ियम की स्थापना कब हुई? इसकी उपयोगिता का संक्षेप में वर्णन करो।

२. यदि तुम किसी वाचनालय के व्यवस्थापक नियुक्त होगे तो उपयुक्त प्रबंधों में से किन किन को कार्यरूप में लाओगे?

३. समझाओ—"शारदा के उपासकों की टोलियाँ·····श्रद्धालु यात्री है ( पृ० ६३-६४ )

४. (क) हिंदी में कितने लिंग है ? हिंदी में लिंग-निर्णय किस आधार पर होता है ? उदाहरण देकर बताओ ।

(ख) इन शब्दों के लिंग पहचानो—लहर, धुन, म्यूज़ियम, ज़िल्द, नींव, चुनाव ।

५. प्रेरणार्थक रूप लिखो—सीना, धोना, खेलना, खाना, बोलना, भेजना, भूलना, सोना, लेना ।

६. सकर्मक क्रियाएं लिखो—बिकना, फटना, टूटना, जुटना, छूना, भागना ।

# ९. नमक का दारोगा

लेखक—प्रेमचंदजी

[ हिंदी उपन्यास-सम्राट् और उत्कृष्ट कहानीकार **बाबू प्रेमचंदजी** बनारस के रहनेवाले थे। आपने हिंदी में **निर्मला, सेवासदन,** कर्मभूमि, कायाकल्प गोदान, आदि उच्च कोटि के उपन्यास लिखकर उपन्यास-साहित्य में अमर स्थान पा लिया है। आपकी छोटी कहानियाँ हिंदी कथा-साहित्य में अपना एक उच्च स्थान रखती हैं। आपने अपनी रचनाओं के लिए प्रधानतया सामाजिक विषयों को ही चुना है। इनमें आप दीन, दलित और शोषित वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में दिखाई पड़ते हैं। आपकी भाषा सुगम, मुहाविरेदार और निराली मिठास लिए हुए रहती है। आपकी शैली अत्यंत सरल और मधुर होती है।

प्रस्तुत कहानी 'नमक का दारोगा' में लेखक ने रिश्वत प्रथा का सुंदर चित्र उपस्थित किया है। ]

(१)

जब नमक का नया विभाग बना और ईश्वरदत्त-वस्तु के व्यवहार करने का निषेध हो गया तो लोग चोरी-छिपे इसका व्यापार करने लगे। अनेक प्रकार के छल-प्रपंचों का सूत्रपात हुआ, कोई घूस[1] से काम निकालता था, कोई चालाकी से! अधिकारियों के पौ बारह[2] थे। पटवारीगिरी[3] का सर्वसम्मानित पद छोड़-छोड़ कर लोग इस विभाग की बरकन्दाजी[4] करते थे। इसके दारोगा पद के लिए तो वकीलों का भी जी

---

१ रिश्वत, उत्कोच। २ पौ बारह होना (मुहा०) खूब लाभ होना। ३ गाँवों में लगान का हिसाब-किताब रखनेवाले का पद या अधिकार। ४ बंदूक रखनेवाले सिपाही की पदवी।

ललचता था। यह वह समय था जब अँगरेजी शिक्षा और ईसाई मत को लोग एक ही वस्तु समझते थे। फ़ारसी का प्राबल्य था। प्रेम की कथाएँ और शृङ्गाररस के काव्य पढ़कर फ़ारसीदां[1] लोग सर्वोच्च पदों पर नियुक्त हो जाया करते थे। मुंशी वंशीधर भी जुलेखा[2] की विरह कथा समाप्त करके मजनूँ[3] और फ़रहाद[4] के प्रेम-वृत्तान्त को नल और नील की लड़ाई और अमेरिका के आविष्कार से अधिक महत्व की बातें समझते हुए रोज़गार की खोज में निकले। उनके पिता एक अनुभवी पुरुष थे।

१ (फ़ा) जाननेवाले, ज्ञाता। २ जुलेखा एक राजकुमारी थी। वह एक दिन याकूब (जाकब) के बेटे यूसुफ (जोसफ) को देखकर उस पर मोहित हो गयी। परंतु दुर्भाग्यवश उसका विवाह याकूब से हो गया। अतृप्त-कामवासना के कारण जुलेखा यूसुफ की तलाश में थी। उसको पाकर वह उससे प्रेम करने लगी। लेकिन यूसुफ़ ने सच्ची बात जानकर उसकी प्रार्थना अस्वीकृत कर दी। जब ये बातें याकूब को मालूम हुईं तो उसने जुलेखा को कड़ी सज़ा दी। जिससे वह अंधी भी बन गयी, तो भी वह यूसुफ से प्रेम करती ही रही। जाकब की मृत्यु के बाद यूसुफ राजा-धिकारी बन गया और जुलेखा को कष्ट से उबारा और आँखें भी दिलवायीं। यूसुफ़ ने उससे खुश होकर एक वर माँगने को कहा तो जुलेखा ने प्रेम-याचना की। उसके अविचल प्रेम को देखकर यूसुफ ने अंत को उससे विवाहकर लिया। इन दोनों की लंबी-चौड़ी प्रेम-कथा कुरान में वर्णित है, परंतु 'जुलेखा' के नाम का उल्लेख तो फारसी साहित्य में ही मिलता है। ३ मजनूँ अरब के एक प्रसिद्ध सरदार का लड़का था जिसका वास्तविक नाम 'क़ैस' था वह लैला नामक एक कन्या पर आसक्त होकर उसके लिए पागल हो गया था। ४ फ़रहाद फारस का एक संग-तराश (पत्थर काटनेवाला मजदूर) था। वह शीरीं नामक राजकुमारी पर आसक्त था और अंतमें उसी के लिए अपने प्राण दे दिए थे।

समझाने लगे, बेटा ! घर की दुर्दशा देख रहे हो। ऋण के बोझ से दबे हुए हैं। लड़कियाँ हैं, वह घास-फूस की तरह बढ़ती चली जाती हैं। मैं करार[1] पर का वृक्ष हो रहा हूँ, न मालूम कब गिर पड़ूँ। अब तुम्हीं घर के मालिक-मुख्तार[2] हो। नौकरी में ओहदे[3] की ओर ध्यान मत देना, यह तो पीर[4] का मज़ार[5] है। निगाह चढ़ावे और चादर पर रखनी चाहिए। ऐसा काम ढूँढ़ना जहाँ कुछ ऊपरी आय हो।

**मासिक वेतन तो पूर्णमासी का चाँद है, जो एक दिन दिखाई देता है और फिर घटते-घटते लुप्त हो जाता है। ऊपरी आय बहता हुआ स्रोत है जिससे सदैव प्यास बुझती है। वेतन मनुष्य देता है, इसीसे उसमें वृद्धि[6] नहीं होती। ऊपरी आमदनी ईश्वर देता है, इसीसे उसमें बरकत होती है।** तुम स्वयं विद्वान् हो, तुम्हें क्या समझाऊँ। इस विषय में विवेक की बड़ी आवश्यकता है। मनुष्य को देखो, उसकी आवश्यकता को देखो और अवसर देखो, उसके उपरान्त जो उचित समझो, करो। गरजवाले[7] आदमी के साथ कठोरता करने में लाभ-ही-लाभ है। लेकिन बेगरज को दाँव पर पाना[8] ज़रा कठिन है। इन बातों को निगाह[9] में बांध लो। यह मेरी जन्म भर की कमाई है।

इस उपदेश के बाद पिताजी ने आशीर्वाद दिया। वंशीधर आज्ञाकारी पुत्र थे। ये बातें ध्यान से सुनीं और तब घर से चल खड़े हुए। इस विस्तृत संसार में उनके लिये धैर्य अपना मित्र, स्वबुद्धि अपनी पथदर्शक और आत्मावलम्बन ही अपना सहायक था। लेकिन अच्छे शकुन से चले

---

१ करार = नदी के ऊपर का ऊँचा किनारा जो जल के काटने से बना हो। करार पर का वृक्ष + अस्थिर आयुवाला आदमी। २ अधिकार प्राप्त प्रतिनिधि। ३ स्थान, पद। ४ महात्मा, सिद्ध। ५ क़ब्र, समाधि। ६ वृद्धि, बढ़ती। ७ ज़रूरतवाला। ८ वश में कर लेना। ९ दृष्टि।

थे, जाते-ही-जाते नमक-विभाग के दारोगा-पदपर प्रतिष्ठित हो गये। वेतन अच्छा और ऊपरी आय का तो ठिकाना ही न था। वृद्ध मुन्शीजी को सुख-संवाद मिला तो फूले न समाये। महाजन लोग कुछ नरम पड़े, कलवार[1] की आशालता लहलहाई[2]। पड़ोसियों के हृदयों में शूल उठने लगी।

(२)

जाड़े के दिन थे और रात का समय। नमक के सिपाही, चौकीदार नशे में मस्त थे। मुंशी वंशीधर को यहाँ आये अभी छः महीनों से अधिक न हुए थे, लेकिन इस थोड़े समय में ही उन्होंने अपनी कार्य-कुशलता और उत्तम आचार से अफसरों को मोहित कर लिया था। अफसर लोग उनपर बहुत विश्वास करने लगे। नमक के दफ्तर से एक मील पूर्व की ओर जमुना बहती थी, उसपर नावों का एक पुल बना हुआ था। दारोगाजी किवाड़ बंद किये मीठी नींद सोते थे। अचानक आँख खुली तो नदी के प्रवाह की जगह गाड़ियों की गड़गड़ाहट तथा मल्लाहों का कोलाहल सुनायी दिया। उठ बैठे। इतनी रात गये गाड़ियाँ क्यों नदी के पार जाती हैं? अवश्य कुछ-न-कुछ गोलमाल[3] है। तर्क ने भ्रम को पुष्ट किया। वरदी[4] पहनी, तमंचा[5] जेब में रखा और बात-की-बात में[6] घोड़ा बढ़ाये हुए पुलपर आ पहुँचे। गाड़ियों की एक लम्बी कतार पुलके पार जाते देखी। डाँटकर पूछा, किसकी गाड़ियाँ हैं?

थोड़ी देर तक सन्नाटा रहा। आदमियों में कुछ काना-फूँसी हुई, तब आगेवाले ने कहा—पंडित अलोपीदीन की।

"कौन पण्डित अलोपीदीन?"

१ शराब बनाने और बेचने वाली एक जाति। २ पनपी, विकसित और प्रफुल्लित हो गयी। ३ अव्यवस्था, गड़बड़। ४ एक तरह का पहनावा (यूनिफारम)। ५ पिस्तौल, छोटी बंदूक। ६ फौरन, झट।

"दातागंज के।"

मुंशी वंशीधर चौंके! पण्डित अलोपीदीन इस इलाके के सबसे प्रतिष्ठित जमींदार थे। लाखों रुपये का लेन-देन करते थे। इधर छोटे से बड़े कौन ऐसे थे जो उनके ऋणी न हों। व्यापार भी बड़ा लम्बाचौड़ा था। बड़े चलते पुरजे[1] आदमी थे। अँगरेज अफसर उनके इलाके में शिकार खेलने आते और उनके मेहमान होते। बारहों मास सदाव्रत चलता था।

मुन्शीजी ने पूछा, गाड़ियाँ कहाँ जायेंगी? उत्तर मिला, कानपुर। लेकिन इस प्रश्न पर कि इनमें है क्या, फिर सन्नाटा छा गया। दारोगा साहब का सन्देह और भी बढ़ा। कुछ देर तक उत्तर की बाट देखकर वह ज़ोर से बोले, क्या तुम सब गूँगे हो गये हो? हम पूछते हैं, इनमें क्या लदा है?

जब इस बार भी कोई उत्तर न मिला तो उन्होंने घोड़े को एक गाड़ी से मिलाकर बोरे को टटोला। भ्रम दूर हो गया। यह नमक के ढेले थे।

( ३ )

पण्डित अलोपीदीन अपने सजीले रथ पर सवार, कुछ सोते कुछ जागते चले आते थे। अचानक कई गाड़ीवानों ने घबराये हुए आकर जगाया और बोले—महाराज! दारोगा ने गाड़ियाँ रोक दी हैं और घाट पर खड़े आपको बुलाते हैं!

पण्डित अलोपीदीन का लक्ष्मीजी पर अखंड विश्वास था। वह कहा करते थे कि संसार का तो कहना ही क्या स्वर्ग में भी लक्ष्मी का ही राज्य है। उनका यह कहना यथार्थ ही था। **न्याय और नीति सब लक्ष्मी के ही खिलौने हैं इन्हें वह जैसे चाहती नचाती है।** लेटे-ही-लेटे गर्व से बोले,

१ बड़ा चालाक।

चलो हम आते है। यह कह कर पण्डितजी ने बड़ी निश्चिंतता से पान के बीड़े लगाकर खाये। फिर लिहाफ[1] ओढ़े हुए दारोगा के पास आकर बोले, बाबूजी आशीर्वाद। कहिये, हमसे ऐसा कौन-सा अपराध हुआ कि गाड़ियाँ रोक दी गयीं। हम ब्राह्माणों पर तो आपकी कृपा दृष्टि रहनी चाहिये।

वंशीधर रुखाई से बोले, सरकारी हुक्म!

पं० अलोपीदीन ने हँसकर कहा, हम सरकारी हुक्म को नहीं जानते और न सरकार को। हमारे सरकार तो आप ही हैं। हमारा और आपका तो घर का मामला है, हम कभी आपसे बाहर हो सकते हैं? आपने व्यर्थ का कष्ट उठाया। यह हो नहीं सकता कि इधर से जायँ और इस घाट के देवता को भेंट न चढ़ावें। मैं तो आपकी सेवा में स्वयं ही आ रहा था। वंशीधर पर ऐश्वर्य की मोहिनी-वंशी[2] का कुछ प्रभाव न पड़ा। ईमानदारी की नई उमंग थी। कड़क कर बोले, हम उन नमकहरामों में नहीं हैं जो कौड़ियों पर अपना ईमान बेचते फिरते हैं। आप इस समय हिरासत[3] में हैं। सवेरे आपका कायदे के अनुसार चालान[4] होगा। बस मुझे अधिक बातों की फ़ुर्सत नहीं है। जमादार बदलूसिंह! तुम इन्हें हिरासत में ले चलो, मैं हुक्म देता हूँ।

पं० अलोपीदीन स्तम्भित हो गये। गाड़ीवानों में हलचल मच गयी। पंडितजी के जीवन में कदाचित् यह पहला ही अवसर था कि पंडितजी को ऐसी कठोर बातें सुननी पड़ीं। बदलूसिंह आगे बढ़ा, किन्तु रोब के मारे यह साहस न हुआ कि उनका हाथ पकड़ सके। पंडितजी ने धर्म को धन का ऐसा निरादर करते कभी न देखा था। विचार किया कि यह

---

१ रात के समय ओढ़ने का रूईदार मोटा कपड़ा। २ मुरली। ३ क़ैद। ४ अपराधी को पकड़कर न्याय के लिए भेजना।

अभी उद्दंड लड़का है। माया-मोह के जाल में नहीं पड़ा। अल्हड़[1] है, झिझकता[2] है। बहुत दीन-भाव से बोले, बाबू साहब! ऐसा न कीजिये, हम मिट जायेंगे। इज्ज़त धूल में मिल जायगी। हमारा अपमान करने से आपको क्या हाथ आयेगा। हम किसी तरह आपसे बाहर थोड़े ही हैं?

वंशीधर ने कठोर स्वर में कहा, हम ऐसी बातें नहीं सुनना चाहते। अलोपीदीन ने जिस सहारे को चट्टान समझ रखा था, वह पैरों के नीचे से खिसका हुआ मालूम हुआ। स्वाभिमान और धन-ऐश्वर्य को कड़ी चोट लगी। किन्तु अभी तक धनकी सांख्यिक शक्ति का पूरा भरोसा था। अपने मुख्तार से बोले, लालाजी, एक हज़ार के नोट बाबू साहब की भेंट करो, आप इस समय भूखे सिंह हो रहे हैं।

वंशीधर ने गरम होकर कहा, एक हज़ार नहीं, एक लाख भी मुझे सच्चे मार्ग से नहीं हटा सकते।

धर्म की इस बुद्धिहीन दृढ़ता और देव-दुर्लभ त्याग पर धन बहुत झुँझलाया। अब दोनों शक्तियों में संग्राम होने लगा। धन ने उछल-उछल कर आक्रमण करने शुरू किये। एक से पाँच, पाँच से दस, दस से पन्द्रह, और पन्द्रह से बीस हज़ार तक नौबत[3] पहुँची, किन्तु धर्म अलौकिक वीरता के साथ इस बहुसंख्यक सेना के सम्मुख अकेला पर्वत की भाँति अटल, अविचलित खड़ा था।

अलोपीदीन निराश होकर बोले; अब इससे अधिक मेरा साहस नहीं। आगे आपको अधिकार है।

वंशीधर ने अपने जमादार को ललकारा। बदलसिंह मन में दारोगाजी को गालियाँ देता हुआ पंडित अलोपीदीन की ओर बढ़ा। पंडितजी घबड़ाकर दो-

१ अनुभव-रहित, गँवार। २ चौंककर एकदम रुक जाना। ३ बारी, दशा।

तीन कदम पीछे हट गये। अत्यंत दीनता से बोले, बाबू साहब ईश्वर के लिये मुझ पर दया कीजिये, मैं पच्चीस हज़ार पर निपटारा[1] करने को तैयार हूँ।

"असम्भव बात है।"

"तीस हज़ार पर?"

"किसी तरह भी सम्भव नहीं?"

"क्या चालीस हज़ार पर भी नहीं।"

"चालीस हज़ार नहीं, चालीस लाख पर भी असम्भव है। बदलूसिंह! इस आदमी को अभी हिरासत में ले लो। अब मैं एक शब्द भी नहीं सुनना चाहता।"

धर्म ने धन को पैरों तले कुचल डाला। अलोपीदीन ने एक हृष्ट-पुष्ट मनुष्य को हथकड़ियाँ लिए हुए अपनी तरफ आते देखा। चारों ओर निराश और कातर दृष्टि से देखने लगे। इसके बाद यकायक मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

( ४ )

दुनियाँ सोती थी, पर दुनियाँ की जीभ जागती थी। सवेरे ही देखिये तो बालक-वृद्ध सब के मुँह से यही बात सुनाई देती थी। जिसे देखिये वहीं पंडितजी के इस व्यवहार पर टीका-टिप्पणी कर रहा था, निन्दा की बौछारें[2] हो रही थीं, मानो संसार से अब पापी का पाप कट गया। **पानी को दूध के नाम से बेचनेवाला ग्वाला, कल्पित रोजनामचे भरनेवाले अधिकारी वर्ग, रेल में बिना टिकट सफर करने वाले बाबू लोग, जाली दस्तावेज़[3] बनानेवाले सेठ और साहूकार यह सब के-सब देवताओं की भाँति गर्दनें चला**

१ फैसला, निर्णय। २ वर्षा। ३ व्यवहार संबंधी लेख।

रहे थे। जब दूसरे दिन पंडित अलोपीदीन अभियुक्त[1] होकर कास्टेबलों के साथ, हाथों में हथकड़ियाँ, हृदय में ग्लानि और क्षोभ भरे लज्जा से गर्दन झुकाये अदालत की तरफ चले तो सारे शहर में हलचल मच गई। मेलों में कदाचित् आँखें इतनी व्यग्र न होती होंगी। भीड़ के मारे छत और दीवार में कोई भेद न रहा[2]।

किन्तु अदालत में पहुँचने की देर थी। पंडित अलोपीदीन इस अगाध वन के सिंह थे। अधिकारी वर्ग उनके भक्त, अमले[3] उनके सेवक, वकील-मुख्तार उनके आज्ञापालक और अरदली,[4] चपरासी, तथा चौकीदार तो उनके बिना मोल के गुलाम थे। उन्हें देखते ही लोग चारों तरफ से दौड़े।

सभी लोग विस्मित हो रहे थे। इसलिये नहीं कि अलोपीदीन ने क्यों यह कर्म किया बल्कि इसलिये कि वह कानून के पंजे में कैसे आये? ऐसा मनुष्य जिसके पास असाध्य-साधन करनेवाला धन और अनन्य वाचालता हो वह क्यों कानून के पंजे में आवे। प्रत्येक मनुष्य उनसे सहानुभूति प्रकट करता था। बड़ी तत्परता से इस आक्रमण को रोकने के निमित्त वकीलों की एक सेना तैयार की गई। न्याय के मैदान में धर्म और धन में युद्ध ठन गया। वंशीधर चुपचाप खड़े थे। उनके पास सत्य के सिवा न कोई बल था, न स्पष्ट भाषण के अतिरिक्त कोई शस्त्र। गवाह थे, किन्तु लोभ से डाँवाँडोल[5]।

यहाँ तक कि मुन्शी जी को न्याय भी अपनी ओर से कुछ खिंचा हुआ देख पड़ता था। वह न्याय का दरबार था, परन्तु उसके कर्मचारियों पर पक्षपात का नशा छाया हुआ था। किन्तु पक्षपात और न्याय का क्या मेल? जहाँ पक्षपात हो, वहाँ न्याय की कल्पना भी नहीं की

१ मुलज़िम, अपराधी। २ भाव यह कि अपार भीड़ थी। ३ अधिकारी। ४ दरवाजे पर रहनेवाला चपरासी। ५ चंचल, अस्थिर।

जा सकती। मुकद्दमा शीघ्र ही समाप्त हो गया। डिप्टी-मैजिस्ट्रेट ने अपनी तजवीज[1] में लिखा—पंडित अलोपीदीन के विरुद्ध दिये गये प्रमाण निर्मूल और भ्रमात्मक हैं। वह एक बड़े भारी आदमी हैं। यह बात कल्पना से बाहर है कि उन्होंने थोड़े लाभ के लिये ऐसा दुस्साहस किया हो। यद्यपि नमक के दारोगा मुन्शी वंशीधर का अधिक दोष नहीं है, लेकिन यह बड़े खेद की बात है कि उनकी उद्दण्डता और विचार के कारण एक भले-मानस को कष्ट झेलना पड़ा। हम प्रसन्न हैं कि वह अपने काम में सजग और सचेत रहता है, किन्तु नमक के मुहकमे[2] की बढ़ी हुई नमकहलाली[3] ने उसके विवेक और बुद्धि को भ्रष्ट कर दिया। भविष्य मे उसे होशियार रहना चाहिए।

वकीलों ने यह फैसला सुना और उछल पड़े। पंडित अलोपीदीन मुस्कराते हुए बाहर निकले। स्वजन बान्धवों ने रुपयों की लूट की। उदारता का सागर उमड़ पड़ा। उसकी लहरों ने अदालत की नींव तक हिला दी। जब वंशीधर बाहर निकले तो चारों ओर से उनके ऊपर व्यंग-बाणों की वर्षा होने लगी। चपरासियों ने झुक-झुककर सलाम किये। किन्तु इस समय एक-एक कटुवाक्य, एक-एक संकेत उनकी गर्वाग्नि को प्रज्वलित कर रहा था। कदाचित् इस मुकद्दमे में सफल होकर वह इस तरह अकड़ते[4] हुए न चलते आज उन्हें संसार का एक खेद-जनक विचित्र अनुभव हुआ। **न्याय और विद्वता, लम्बी-चौड़ी उपाधियाँ, बड़ी-बड़ी दाढ़ियाँ और ढीले चोंगे एक भी सच्चे आदर के पात्र नहीं हैं।**

वंशीधर ने धन से वैर मोल लिया था! उसका मूल्य चुकाना अनिवार्य था! कठिनता से एक सप्ताह बीता होगा कि मुअत्तली[5] का

---

१ फैसला। २ 'डिपार्टमेंट'। ३ स्वामिभक्ति। ४ गर्व करते हुए। ५ पदच्युति, 'डिसमिस'।

परवाना[1] आ पहुँचा। कार्य्य-परायणता का दंड मिला। बेचारे भग्न हृदय, शोक और खेद से व्यथित घर को चले। बूढ़े मुन्शीजी तो पहले ही से कुढ़-बुढ़ा[2] रहे थे कि चलते-चलते इस लड़के को समझाता था, लेकिन इसने एक न सुनी। बस मनमानी करता है। हम तो कलार[3] और कसाई[4] के तगादे सहें, बुढ़ापे में भगत[5] बनकर बैठें और वहाँ बस वही सूखी तनख्वाह! हमने भी तो नौकरी की है और कोई ओहदेदार नहीं थे, लेकिन जो काम किया, दिल खोलकर किया और आप ईमानदार बनने चले हैं। घर में चाहे अन्धेरा, मस्जिद में अवश्य दिया जलायेंगे[6]। खेद ऐसी समझ पर! पढ़ना-लिखना सब अकारथ गया। इसके थोड़े ही दिनों बाद जब मुन्शी वंशीधर इस दुरवस्था में घर पहुँचे और बूढ़े पिताजी ने यह समाचार सुना तो सिर पीट लिया। बोले, जी चाहता है कि तुम्हारा और अपना सिर फोड़ लूँ। बहुत देर तक पछता-पछता कर हाथ मलते[7] रहे। क्रोध में कुछ कठोर बातें भी कहीं और यदि वंशीधर वहाँ से टल न जाते तो अवश्य ही यह क्रोध विकट रूप धारण करता। वृद्धा माता को भी दुःख हुआ। जगन्नाथ और रामेश्वर यात्रा की कामनाएँ मिट्टी में मिल गईं। पत्नी ने तो कई दिन तक सीधे मुँह से बात भी नहीं की।

इसी प्रकार एक सप्ताह बीत गया। सन्ध्या का समय था। बूढ़े मुन्शीजी बैठे राम-नाम की माला जप रहे थे। इसी समय उनके द्वार पर एक सजा हुआ रथ आकर रुका। हरे और गुलाबी परदे, पछहियें[8]

---

१ आज्ञा-पत्र। २ झुँझलाना। ३ कलवार, शराब बेचनेवाला। ४ वधिक, बूचड़, 'बूचर'। ५ भक्त। ६ कहावत है— घर में दिया तो मसजिद में दिया या घर में दिया जलाकर मसजिद में जलाओ; charity begins at home. ७ हाथ मलना (मुहा०) पछताना। ८ पश्चिमी देश के।

बैलों की जोड़ी, उनकी गर्दनों में नीले धागे, सींग पीतल से जड़ी हुई। कई नौकर लाठियाँ कन्धों पर रखे साथ थे। मुंशी जी अगुवानी[1] को दौड़े! देखा तो पण्डित अलोपीदीन हैं। झुककर दंडवत की और लल्लो-चप्पो की बातें[2] करने लगे, हमारा भाग्य उदय हुआ, जो आपके चरण इस द्वार पर आये। आप हमारे पूज्य देवता हैं, आपको कौन-सा मुँह दिखावें: मुँह में तो कालिख लगी हुई है किन्तु क्या करें, लड़का अभागा कपूत[3] है, नहीं तो आपसे क्यों मुँह छिपाना पड़ता? ईश्वर निस्सन्तान चाहे रक्खे, पर ऐसी सन्तान न दे।

अलोपीदीन ने कहा, नहीं भाई साहब, ऐसा न कहिए। मुन्शीजी ने चकित हो कर कहा, ऐसी संतान को और क्या कहूँ? अलोपीदीन ने वात्सल्यपूर्ण स्वर से कहा, कुलतिलक और पुरुषों की कीर्ति उज्वल करने वाले संसार में ऐसे कितने धर्मपरायण मनुष्य हैं जो धर्म पर अपना सब कुछ अर्पण कर सकें?

पं० अलोपीदीन ने वंशीधर से कहा, दारोगाजी, इसे खुशामद न समझिये, खुशामद करने के लिए मुझे इतना कष्ट उठाने की ज़रूरत न थी। उस रात को आपने अपने अधिकार बल से मुझे अपनी हिरासत में लिया था, किन्तु आज मैं स्वेच्छा से आपकी हिरासत में आया हूँ। मैंने हज़ारों रईस और अमीर देखे, हज़ारों उच्च पदाधिकारियों से काम पड़ा किन्तु मुझे परास्त किया तो आपने। मैंने सबको अपना और अपने धनका गुलाम बनाकर छोड दिया। मुझे आज्ञा दीजिये कि आप से कुछ विनय करूँ।

वंशीधर ने अलोपीदीन को आते देखा तो उठकर सत्कार किया; किन्तु स्वाभिमान सहित। समझ गये कि यह महाशय मुझे लज्जित करने

---

१ अभ्यर्थना ('ग्रीट' अंग्रेज़ी)। २ बेसिर-पैर की बातें, गप। ३ दुष्ट-पुत्र।

और जलाने आये हैं। क्षमा-प्रार्थना की चेष्टा नहीं की, वरन् उन्हें अपने पिता की यह ठकुरसुहाती की बात असह्य-सी प्रतीत हुई। पर पण्डितजी की बातें सुनीं तो मन की मैल मिट गयी। पण्डितजी की ओर उड़ती हुई दृष्टि से देखा।

सद्भाव झलक रहा था। गर्व ने अब लज्जा के सामने सिर झुका दिया। शर्माते हुए बोले, यह आपकी उदारता है जो ऐसा कहते हैं। मुझसे जो कुछ अविनय हुई है, उसे क्षमा कीजिये। मैं धर्म की बेड़ी में जकड़ा हुआ था। नहीं तो वैसे मैं आपका दास हूँ। जो आज्ञा होगी, वह मेरे सिर-माथे पर।

अलोपीदीन ने विनीत भाव से कहा, नदी के तट पर आपने मेरी प्रार्थना नहीं स्वीकार की थी, किन्तु आज स्वीकार करनी पड़ेगी। वंशीधर बोले, मैं किस योग्य हूँ, किन्तु जो कुछ सेवा मुझसे हो सकती है उसमें त्रुटि न होगी।

अलोपीदीन ने एक स्टाम्प लगा हुआ पत्र निकाला और उसे वंशीधर के सामने रख कर बोले, इस पद को स्वीकार कीजिये और अपने हस्ताक्षर कर दीजिये। मैं ब्राह्मण हूँ, जब तक यह सवाल पूरा न कीजियेगा, द्वार से न हटूँगा।

मुन्शी वंशीधर ने कागज को पढ़ा तो कृतज्ञता से आंखों में आँसू भर आये। पण्डित अलोपीदीन ने उन्हें अपनी सारी जायदाद का स्थायी मैनेजर नियत किया था। छः हज़ार वार्षिक वेतन के अतिरिक्त रोजाना खर्च अलग, सवारी के लिए घोड़े, रहने को बँगला, नौकर-चाकर मुफ्त। कम्पित स्वर से बोले, पण्डितजी, मुझ में इतनी सामर्थ्य नहीं है कि आपकी इस उदारता की प्रशंसा कर सकूँ। किन्तु मैं ऐसे उच्चपद के योग्य नहीं हूँ।

अलोपीदीन हँसकर बोले, मुझे इस समय एक अयोग्य मनुष्य की ही जरूरत है। वंशीधर ने गम्भीर भाव से कहा, यों मैं आपका दास हूँ। आप जैसे कीर्तिवान्

सज्जन पुरुष की सेवा करना मेरे लिये सौभाग्य की बात है। किन्तु मुझ में न विद्या है, न बुद्धि, न वह अनुभव जो इन त्रुटियों की पूर्ति कर देता है। ऐसे महान् कार्य के लिये एक बड़े मर्मज्ञ अनुभवी मनुष्य की ज़रूरत है।

अलोपीदीन ने कलम-दान से कलम निकाली और उसे वंशीधर के हाथ में देकर बोले, न मुझे विद्वत्ता की चाह है, न अनुभव की, न मर्मज्ञता की, न कार्यकुशलता की। इन गुणों के महत्व का परिचय खूब पा चुका हूँ। अब सौभाग्य और सुअवसर ने मुझे वह मोती दे दिया है जिसके सामने योग्यता और विद्वत्ता की चमक फीकी पड़ जाती है। यह कलम लीजिये, अधिक सोच-विचार न कीजिये, दस्तखत कर दीजिये। परमात्मा से यही प्रार्थना है कि वह आपको सदैव वही नदी के किनारेवाला, बे-मुरौवत[1], उद्दण्ड, कठोर, परन्तु धर्मनिष्ठ दारोगा बनाये रखे!

वंशीधर की आँखें डबडबा आईं। हृदय के संकुचित पात्र में इतना एहसान[2] न समा सका। एक बार फिर पण्डितजी की ओर भक्ति और श्रद्धा की दृष्टि से देखा और काँपते हुए हाथ से मैनेजरी के कागज़ पर हस्ताक्षर कर दिये।

अलोपीदीन ने प्रफुल्लित होकर उन्हें गले लगा लिया।

## अभ्यास

१. छोटी कहानी का स्वरूप कैसा होना चाहिए? इस कहानी में लेखक ने उसको कहाँ तक निभाया है? उदाहरण देकर समझाओ।

१ निस्संकोच। २ कृतज्ञता।

२. पहले वंशीधर ने अलोपीदीन से रिश्वत लेने से क्यों इनकार किया ? किन्तु अंत को क्यों उसी का नौकर बन गया ? यह कहाँ तक उचित है ?

३. टिप्पणियाँ लिखो —मजनूँ, फ़रहाद, ज़ुलेखा ।

४. (अ) "वेतन मनुष्य देता है.....बरकत होती है"—यह किसकी उक्ति है ? इसका क्या तात्पर्य है ? (पृ० ६७)

(ब) इस उक्ति का कहानी के आधार पर समर्थन करो—"न्याय और नीति सब.....नचाती है" (पृ० ६९)

५. (अ) वाच्य कितने प्रकार के होते हैं ? उदाहरण दो ।

(ब) वाच्य परिवर्तन करो—(१) वह लड़की ये कपड़े नहीं पहनेगी । (२) वे बंदर उस साड़ी को फाड़ रहे हैं । (३) रामनाथ अपने बच्चे को मिठाइयाँ खिला रहे हैं । (४) श्रीरामचंद्रजी ने जंगल में रहते समय अनेक राक्षसों को मार डाला था । (५) भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयोग करो :—आप, क्या, सी, जो, पर, और, सो, कर ।

# १०. कवि रवींद्रनाथ ठाकुर

लेखक—लक्ष्मीधर वाजपेयी

[ लक्ष्मीधर वाजपेयी—आपका जन्म कानपुर जिले में हुआ था। आप बड़े अध्यवसायी हैं। 'हिंदी केसरी' 'चित्रमय जगत्' और 'आर्य मित्र' के संपादक रह चुके हैं; अब 'तरुण भारत ग्रंथावली' निकाल रहे हैं। आपने 'दासबोध' आदि मराठी ग्रंथों का हिंदी में अनुवाद किया है। आपके द्वारा लिखित, अनुवादित और संपादित ग्रंथों की संख्या २५ से अधिक है। ]

हमारे देश में प्राचीन काल से ही बहुत से साधु होते चले आये हैं। गुरु नानकजी, कबीरदासजी, सूरदासजी, तुलसीदासजी, समर्थ रामदासजी, चैतन्यदेव, नाभाजी, तुकारामजी, नामदेवजी, नरसी मेहता, दयारामजी इत्यादि इसी प्रकार के साधु कवि थे। आजकल कविता के साथ-साथ साधुत्व बहुत ही कम पाया जाता है, और बिना साधुत्व के कविता भी दो कौड़ी की होती है। ईश्वर की भक्ति में भीतर-बाहर से सराबोर[१] होकर कवि अपने जो उद्गार निकालता है, उसीका नाम सच्ची कविता है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी आजकल इसी श्रेणी के कवियों में हैं। उनको सरस्वती का, भगवान् का, वरदान प्राप्त है, और वे गद्य तथा पद्य में जो कुछ लिखते हैं, अथवा जो कुछ वार्तालाप करते हैं, वह सब सरस्वती का प्रभाव है; और वह सच्ची कविता है, जिससे इस समय सिर्फ़ भारतवर्ष को ही नहीं, बल्कि सारे संसार को आनन्द मिल रहा है।

---

१ बिल्कुल भीगा हुआ, तरबतर।

रवीन्द्रनाथ का कुटुम्ब बंगाल में अत्यन्त प्राचीन काल से एक बहुत प्रतिष्ठित कुटुम्ब समझा जाता है। इस वंश में कई बड़े-बड़े साधु और महात्मा पहले भी हो चुके हैं। स्वयं रवींद्रनाथ के पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ टाकुर भी बंगाल में एक बहुत बड़े महात्मा थे। इनकी शान्ति, दया, क्षमा, धर्मज्ञान और परोपकार इत्यादि सद्गुणों के कारण ही लोगों ने इनको आजकल के समय में भी महर्षि की पदवी दी थी। इन्हीं महात्मा के घर में सन् १८६१ में हमारे चरित्र-नायक रवीन्द्रनाथ का कलकत्ते में जन्म हुआ। रवीन्द्रनाथ की माता भी एक प्रतिष्ठित कुल की सुयोग्य महिला थीं। वे अत्यन्त सुशील, धर्मात्मा, पतिव्रता, सती-साध्वी देवरूप थीं। साधु और साध्वी माता-पिता के सद्गुण रवीन्द्रनाथ में बालपन से ही दिखाई देने लगे थे। परन्तु पूज्य माता की गोद में बहुत दिनों तक पालन-पोषण और शिक्षण प्राप्त करने का सौभाग्य रवीन्द्रनाथ को नहीं मिला। उनकी माता का देहान्त उनके बचपन में ही हो गया। पिता महर्षि देवेन्द्रनाथजी विशेषकर परोपकार, धर्म-प्रचार और ईश्वर-चिन्तन में ही मग्न रहा करते थे। अतएव रवीन्द्रनाथ का बालपन अधिकतर प्रकृति माता की ही गोद में व्यतीत हुआ। इनके पालन-पोषण की व्यवस्था कुटुंब के स्वामी-भक्त नौकर-चाकरों के द्वारा हुई। मातृप्रेम तो इनको बिलकुल ही प्राप्त नहीं हुआ। अतएव इनके स्वभाव में एकान्त-प्रियता के लक्षण पहले ही से दिखाई देने लगे थे। अपने बालपन के विषय में उन्होंने एक बार अपने एक अँगरेज मित्र से कहा था—

"मैं अपने बालपन की एक खास बात यही बतला सकता हूँ कि मेरा स्वभाव बहुत ही एकान्त-प्रिय था। मेरे पिता की भेंट मुझ से बहुत कम होती थी। परन्तु घर में सब उनकी ऐसी धाक[1] मानते थे कि जैसे वे

१ आतंक, रौब, भय।

प्रत्यक्ष ही हम लोगों के सामने खड़े हों। जैसे कोई कैदी किसी कोठरी में, सिपाहियों की देख-भाल में रख दिया गया हो, इसी प्रकार मैं अपने घर में रहता था। मैं अधिकतर अपने कमरे में ही बैठा रहता था, और मेरे आस-पास के घर के नौकर-नौकरानियाँ ही मेरे साथी-संगी थे। हमारे कमरे के बाहर संसार में क्या हो गया है, इसके नाना भाँति के चित्र मैं अपनी कल्पना से ही अपने मन में लाया करता, और उन्हीं से अपना मनोरंजन किया करता था। बस यही मेरा लड़कपन का खेल-कूद था। जहाँ तक मैं याद करता हूँ प्रकृति निरीक्षण का ही मुझे बालपन में विशेष प्रेम था। जब कभी मैं आकाश में बादलों के ऊपर बादलों को दौड़ता हुआ देखता, तो मैं पागल-सा हो जाता। बचपन में भी मुझे कुछ ऐसा विश्वास था कि जैसे हमारे आस पास कोई हमारा अत्यन्त प्राणप्रिय मित्र अवश्य मौजूद है। पर उसका नाम क्या है, उसका रूप कैसा है, सो मैं प्रकट रूप मे बतला नहीं सकता था। प्रकृति पर तो मेरा बहुत ही प्रेम था, जिसको मैं शब्दों के द्वारा प्रकट नहीं कर सकता। उसीको अपनी अत्यन्त प्राणप्रिय सखी समझता, और उसमें क्षण-क्षण पर मुझे नवीन सौन्दर्य दिखाई देता!"

रवीन्द्र की बालपन की इस भावना मे ही उनके कवित्व का सारा रहस्य भरा हुआ है। अस्तु।

रवीन्द्रनाथ की बालपन की शिक्षा स्कूल में बहुत ही कम हुई। वे लड़कपन में जिस पाठशाला में पढ़ने को जाते थे उस पाठशाला के अध्यापकों का व्यवहार विद्यार्थियों के साथ अच्छा नहीं था। बालकों को प्यार के साथ विद्या पढ़ाने की चाल उस समय बहुत कम थी। ताड़ना और भय दिखलाकर अध्यापक लोग शिष्यों को पढ़ाया करते थे। बालक रवीन्द्र के साथ अध्यापकों का ऐसा ही बर्त्ताव हुआ।

रवीन्द्रनाथ कहते हैं कि एक अध्यापक तो पाठशाला में उनको बहुत ही निर्दय मिला। वह थोड़ी-सी चूक[1] होने पर भी रवीन्द्र को बिना टोपी के खुले सिर घंटों धूप में खड़ा रखता। अन्य विद्यार्थियों के साथ भी रवीन्द्र ने अध्यापकों का ऐसा ही क्रूर व्यवहार देखा। इसका परिणाम यह हुआ कि पाठशाला की पढ़ाई से उनका मन हट गया, और पाठशाला में न जाना पड़े इसके लिए वे अनेक लड़कपन के बहाने निकालने लगे। रवीन्द्रनाथ स्वयं कहते हैं कि कभी-कभी तो वे अपने पैर के बूटों को पानी में डुबो कर वैसे ही गीले बूट पहने हुए घूमा करते थे कि जिससे उनको बुखार आ जाय, और इसी निमित्त से पाठशाला से पिण्ड छूटे[2]! सच है रवीन्द्र के समान कोमल भावनाओं के जगत् में विचरण करनेवाले बालकों को स्कूल की पढ़ाई के लिए जबरदस्ती मज़बूर करना कभी हितकर नहीं है। यह बात उनके पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के ध्यान में तुरंत आगयी, और उन्होंने बातकी बात में रवीन्द्र का स्कूल छुड़वा कर घर में ही निजी शिक्षक के द्वारा उनकी पढ़ाई का प्रबंध किया। निजी शिक्षक की सहायता से अपने भाइयों के साथ रवीन्द्र बाबू ने अपने विद्याध्ययन में बहुत शीघ्र उन्नति कर ली। महर्षि देवेन्द्रनाथ का ऐसा विचार था कि जिस विद्या और जिस कला की ओर उनके बालकों की स्वाभाविक रुचि हो, वही विद्या और वही कला उनको सिखाई जाय। रवीन्द्र बाबू की रुचि बालकपन से ही काव्य, संगीत, नाटक और चित्रकला की ओर विशेष थी। अतएव इन्हीं विषयों की शिक्षा उनको दी गई, और स्वाभाविक रुचि होने के कारण बहुत शीघ्र वे उपर्युक्त कलाओं में निपुण हो गये।

---

१ भूल, ग़लती। २ (मुहा०) छुटकारा मिलना।

कवि की प्रतिभा तो उनमें स्वाभाविक ईश्वर की दी हुई थी। परन्तु प्रसिद्ध बंग-कवि चंडीदास, मैथिल-कवि विद्यापति तथा कबीरदास, चैतन्यदेव इत्यादि साधु कवियों की कविताओं के अध्ययन का प्रभाव उन पर बहुत पड़ा। अतएव कविता के विषय में रवीन्द्र बाबू इन साधुओं को अपना गुरूस्वरूप मानते हैं।

रवीन्द्र बाबू १७-१८ वर्ष की अवस्था में प्रथम जनता के सामने कवि रूप में प्रकट हुए। उस समय की उनकी रची हुई "प्रभात-संगीत", "संध्या-समीर" और "मृत्यु का अमरत्व" इत्यादि कविताएँ बहुत पसंद की गईं।

रवीन्द्र बाबू पहले-पहल सत्रह वर्ष की अवस्था में विलायत गये, और वहाँ पर लगभग एक वर्ष रह कर प्रसिद्ध साहित्य-सेवी और राजनीतिज्ञ जॉन मोर्ले[1] के यहाँ अँगरेज़ी-साहित्य का अध्ययन करते रहे। एक बार विलायत जाकर बैरिस्टर बनने की भी उन्होंने कुछ चेष्टा की थी, पर उनको तो विश्वविख्यात कवि बनना था। अतएव उस समय उनको उक्त चेष्टा में सफलता नहीं हुई।

तेईस वर्ष की अवस्था में रवीन्द्र बाबू का विवाह हुआ और वे गृहस्थ-धर्म में प्रविष्ट हुए। उस समय गाँव में जाकर अपनी पैतृक ज़मीन-जागीर का प्रबन्ध करने के लिए पिता ने उनको आज्ञा दी। कलकत्ते के समान सुन्दर नगर से बाहर गाँव में जाकर रहना उनको पसंद नहीं था। पर पिता की आज्ञा कैसे टाली जाय? युवक रवीन्द्र बाबू चुपके से गाँव पर जाकर रहने लगे, और कुछ ही दिन बाद उनका मन वहाँ रम गया। गाँव में रहने के कारण उनको सर्वसाधारण लोगों और किसानों के आचरण-व्यवहार

१ कोई-कोई इसका उच्चारण मार्ले या मार्ले करते हैं।

और उनकी परिस्थिति को जानने का बहुत अच्छा अवसर मिला। वहाँ उन्होंने अपने प्रत्यक्ष ज्ञान से यह अनुभव किया कि मनुष्य मात्र के हृदय में आनन्द और दुःख तथा वासना और भावना का परस्पर मिश्रण कैसा होता है।

पैंतीस वर्ष की अवस्था तक उनका गार्हस्थ जीवन बहुत ही सुख और आनन्द के साथ व्यतीत हुआ। हम ऊपर कह चुके हैं कि उन्होंने अठारह वर्ष की अवस्था से अपनी काव्य-रचना प्रारंभ की थी। उसके बाद ३५ वर्ष की अवस्था तक उनकी अनेक मनोहर रचनाएँ प्रकाशित हुईं। इन रचनाओं में मनुष्य का स्वर्गीय सात्विक प्रेम दिखलाई देता है। संसार प्रेममय है, सब मनुष्य परस्पर संसारिक प्रेम से बँधे हैं, यही उस समय उनकी कविता का विषय था। बंगाल की जनता पर उनकी उस कविता और गीतों का बहुत प्रभाव पड़ा। उस समय उनकी उक्त रचनाओं का एक संग्रह "मालाकार" के नाम से प्रकाशित हुआ।

परन्तु पैंतीस वर्ष की अवस्था के बाद उनके जीवन में कुछ ऐसी घटनाएँ घटीं, कि जिन्होंने उनके उस नैसर्गिक प्रेममय जीवन में एक विचित्र क्रांति, अर्थात् परिवर्तन कर दिया। उनका जीवन स्वाभाविक ही भगवद्भक्ति और साधुत्व की ओर अब विशेष रूप से अग्रसर हुआ—अर्थात् ३५ वर्ष की अवस्था में पहले उनकी प्रिय पत्नी का देहान्त हुआ! फिर कुछ महीने बाद उनकी लड़की क्षय रोग में स्वर्गवासिनी हुई। इस प्रकार, एक के बाद एक, ऐसी शोकजनक घटनाएँ घटीं, जिन्होंने उनके जीवन को और भी ऊँचा करके उनको बिलकुल साधु बना दिया। इस विषय में रवीन्द्र बाबू ने स्वयं एक बार अपने मित्र ऐंड्रयूज़ साहब से कहा था—

"यह मृत्यु मानो मेरे लिए ईश्वर का एक बड़ा भारी वरदान सा मालूम हुआ। मैंने पूर्णतया समझ लिया कि परमात्मा ने मेरे ऊपर पूर्ण कृपा की। मेरा कुछ भी नष्ट नहीं हुआ। मुझे विश्वास हो गया कि मिट्टी का एक कण भी चाहे वह हम को नष्ट होता हुआ-सा दिखाई दे, पर वास्तव में वह नष्ट नहीं हो सकता। मैं परमात्मा पर सारा भार डालकर बिलकुल निश्चिन्त हो गया। यही नहीं, बल्कि मुझे विश्वास हो गया कि मेरा जीवन अब बिलकुल सार्थक हुआ। मृत्यु क्या चीज़ है, इसका ज्ञान अब मुझे हुआ। **मृत्यु का अर्थ है पूर्णता। वह किसी को नाश नहीं कर सकती। उससे कुछ भी नष्ट नहीं होता।**"

बस, उपर्युक्त घटनाओं से रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविता का प्रवाह दूसरी ही ओर को बह चला, जिसकी पूर्ण झलक उनकी "गीताञ्जलि" नामक विश्व-विख्यात कविता में दिखलाई देती है। गीताञ्जलि के एक गीत का भावार्थ देखिये—

"भगवन्, फूल की तरह आप ही आप खिला हुआ यह गात तुम्हारा ही दिया हुआ है। यह फूल देख कर मुझे बहुत आनन्द हो रहा है, और अब इसको अपनाकर मैं तुम्हें समर्पित करता हूँ। सो तुम स्नेह से हँसकर इसको अपने हाथ से ग्रहण करो। प्रभो, कृपा करो! मेरा मान रखो।"

सन् १९१२ ई० में रवि बाबू ने विलायत में अपनी बँगला गीताञ्जलि का अँगरेजी में अनुवाद किया। इस गीताञ्जलि के गीत-पुष्पों की सुगन्ध यूरोप के लोगों को इतनी सुन्दर और मनोहर मालूम हुई कि सन् १९१३ ई० में स्वीडन-निवासी महात्मा नोबेल का स्थापित किया

हुआ, पुरस्कार* रवींद्र बाबू को ही दिया गया। इस पुरस्कार का निर्णय करनेवाली विद्वत्-सभा ने सर्व-सम्मति से यह निर्णय प्रकट किया कि यह ग्रन्थ संसार का सत्य हित-साधन करनेवाला और मनुष्य-मात्र के चित्त को शान्ति देनेवाला है।

रवीन्द्रनाथ को अभिनन्दनपत्र देते समय यूरोप की विद्वत्सभा ने ये शब्द कहे थे—

"मनोहर कविता ही आपके लिए ईश्वरीय वरदान है। इस वरदान का आप पवित्र और मंगलकार्य में उपयोग कर रहे हैं। आपने चित्त को आनन्द दिया है, मन को शान्ति दी है, कानों को गाना सुनाया है, नेत्रों को सौंदर्य के रूप दिखलाये हैं, और आत्मा को उसके दिव्य स्वरूप का ज्ञान करा दिया है।"

इन शब्दों से रवीन्द्रबाबू की काव्यप्रतिभा और उनकी "गीतांजलि" का महत्व भली भाँति प्रकट हो जाता है। "गीतांजलि" पर एक लाख बीस हज़ार रुपये का जो पुरस्कार उनको मिला, वह उन्होंने अपनी परम प्रिय संस्था, बोलपुर के "शान्तिनिकेतन" को दे दिया।

---

* **नोबेल पुरस्कार**—आल्फ्रेड नोबेल स्वीडन का एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक था। उसने रसायन शास्त्र में विशेष अन्वेषण करके एक तरह की बारूद का आविष्कार किया जिसकी बिक्री से उसको अनगिनत धन मिल गया। इस अतुल लाभ से उसने एक निधि स्थापित की। उसके ब्याज से प्रतिवर्ष पाँच पुरस्कार १— रसायन-शास्त्र, २— भौतिकशास्त्र, ३— वैद्यक-शास्त्र, ४— साहित्य और ५— शांति-स्थापना के लिए दिए जाते हैं। प्रत्येक पुरस्कार १,२०,००० रुपये का होता था। इस पुरस्कार का आरंभ १९०१ ई० में हुआ।

"नोबेल-पुरस्कार" के मिलने पर रवीन्द्र बाबू का नाम सारे संसार में विख्यात हो गया। उनकी "गीतांजलि" का अनुवाद संसार की प्रायः सब सभ्य भाषाओं में प्रकाशित हुआ। अँगरेजी में तो उसके कई उत्तमोत्तम और सुन्दर संस्करण निकाले गये हैं। "गीतांजलि" का दिव्य आनन्द प्राप्त करके स्वाभाविक ही कवीन्द्र-रवीन्द्र के दर्शन की और उनके प्रत्यक्ष उपदेश सुनने की, अभिलाषा पश्चिमी लोगों को हुई अतएव अनेक देशों के विद्वानों ने अपने अपने देशों में पधारने के लिए रवीन्द्र बाबू को आमन्त्रित किया। इधर रवीन्द्र बाबू को भी देश-देशान्तर की यात्रा में पहले ही से बहुत आनन्द आता है। प्रकृति-निरीक्षण और मानवी-चरित्र का अध्ययन उनके अत्यन्त प्रिय विषय हैं। इसलिए उन्होंने पिछले वर्षों में इंगलैण्ड, फ्रांस, इटली, जर्मनी, आस्ट्रिया, स्वीडन, स्विटज़रलैंड, अमेरिका, इत्यादि सभी पश्चिमी देशों की यात्रा की है। इधर पूर्वीय देशों में चीन, जापान, स्याम और जावा, बाली, मालाया इत्यादि पूर्वीय द्वीपों में भी उन्होंने अपना दिव्य-सन्देश पहुँचाया है। सब देशों के विद्वानों ने तथा कई देशों की सरकार ने भी उनका अपूर्व गौरव तथा आदर-सत्कार किया है। उनके दिव्य-संदेश का मुख्य विषय विश्व-प्रेम है। **संपूर्ण संसार के मनुष्य एक ही परम-पिता की सन्तान हैं; सब एक ही सूत्र से बँधे हैं। सबमें परस्पर प्रेम और ऐक्यभाव होने से ही सब का उद्धार होगा।** इस के अतिरिक्त रवीन्द्र बाबू का यह भी दृढ़ विश्वास है कि **भारतीय सभ्यता और आध्यात्मिकता से ही सारे मानव-समाज का कल्याण हो सकता है।** उनके उपदेश के विषय में एक पश्चिमी लेखक लिखता है:—

रवीन्द्रनाथ के व्याख्यान सुनकर हम को बहुत कौतूहल हुआ। ऐसा जान पड़ा कि भारत की प्राचीन अध्यात्मविद्या हमारे देश में पहुँचाने वाले ये हमारे नवीन गुरु हैं। उनका व्याख्यान सुनते समय हमको ऐसा मालूम

हुआ कि जैसे हम किसी ऋषि के आश्रम में बैठकर उसका उपदेश सुन रहे हों।"

भिन्न-भिन्न देशों में रवीन्द्र बाबू ने जो व्याख्यान दिये हैं, उनका संग्रह उनके "साधना" नामक ग्रंथ के रूप में प्रकाशित हुआ है, इस ग्रंथ में स्वार्थ और परमार्थ संबंधी उनके उच्च विचार भली भांति प्रकट हुए हैं। रवींद्रनाथ ने सैकड़ों ग्रन्थ लिखे हैं जिनमें नाटक, उपन्यास, आख्यायिका निबन्ध,[1] प्रबन्ध इत्यादि सब प्रकार के ग्रन्थ हैं। कविता-रत्नों की तो बहुत विपुलता[2] है जिन में नाना प्रकार के भावात्मक गान भी हैं। उनकी "गीतांजलि" को जो सम्मान सारे संसार में प्राप्त हुआ है, वह आधुनिक काल के अन्य किसी भारतीय ग्रन्थ को प्राप्त नहीं हुआ।

रवीन्द्र बाबू केवल कवि, गायक, नाटककार, चित्रकार और व्याख्याता ही नहीं हैं, बल्कि एक सुयोग्य संपादक की हैसियत से भी वे अपनी मातृभाषा की पहले बहुत कुछ सेवा कर चुके हैं। उन्होंने अपनी युवावस्था में "बालक" नामक एक मासिक पत्र निकाला था। इसके बाद "भारती", "भांडार", "साधना" और "बंग-दर्शन" नामक पत्रों का भी आपने समय-समय पर बड़ी योग्यता से सम्पादन किया। "प्रवासी" के "संकलन" नामक स्तम्भ का भी उन्होंने कुछ साल तक संपादन

१ निबंध वह लेख है जिसमें किसी गहन विषय पर संक्षेप में विद्वत्तापूर्ण निजी विचार प्रगट किया गया हो। परंतु प्रबंध आलोचनात्मक तथा गवेषणापूर्ण विस्तृत रचना है, जिसमें प्रतिपाद्य विषय की उत्पत्ति, स्वरूप, उपयोग, महत्व आदि का विशद विवेचन किया गया हो। अँग्रेज़ी में निबंध को 'एसे' और प्रबंध को 'थीसिस' या 'ट्रीटाइज़' कह सकते हैं।

२ अधिकता, ज्यादती, आधिक्य।

किया था। अपने संपादन काल में उन्होंने अनेक नवीन लेखकों को सुचारु-रूप से लेखनकला की ओर प्रवृत्त करके उनको उत्साहित किया।

रवीन्द्र बाबू अपने देश के बालक-बालिकाओं को भारत की प्राचीन परिपाटी[1] से शिक्षा देने का भी अपनी युवावस्था से ही प्रयत्न करते आये हैं। आज से लगभग पैंतीस वर्ष पूर्व ही उन्होंने कलकत्ता नगर में अपनी एक निजी पाठशाला स्थापित की थी। इस पाठशाला के संचालन में उन्होंने कितना प्रयत्न और स्वार्थ त्याग किया था, सो उन्हींके शब्दों में सुनिए। उक्त पाठशाला की बात चलाते हुए उन्होंने ऐंड्रयूज साहब से एक बार कहा था—

"इस पाठशाला को चलाने के लिए मैंने अपनी पुस्तकें बेचीं, अपनी पुस्तकों के प्रकाशन का अधिकार बेचा, जो कुछ मेरे पास था सब बेच डाला। उस समय मैंने कौन-कौन से प्रयत्न किये, और कैसी कैसी कठिनाइयाँ झेलीं, क्या बताऊँ! इस पाठशाला के स्थापित करने में मेरा यह उद्देश्य था कि विद्यार्थियों में स्वदेशाभिमान की जागृति हो। फिर आगे चल कर उसमें अध्यात्मविद्या की शिक्षा भी बढ़ा दी थी। उस समय की कठिनाइयों और संकट के कारण मेरी मानसिक दशा में एक विचित्र परिवर्तन उपस्थित हुआ था।"

अस्तु, रवीन्द्र बाबू की कलकत्ते की यह पाठशाला तो नहीं चल सकी, पर पाठशाला चलाने की लगन उनके मन में बराबर लगी रही। उनके पूज्य पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने कलकत्ते से कुछ दूर बोलपुर नामक स्थान के घने जंगल में, अपने भगवद्भजन के लिए, लगभग ४० वर्ष पहले एक आश्रम बनाया था यहाँ उक्त महात्मा को अपूर्व शान्ति का

१ क्रम, पद्धति।

अनुभव होता था, और इसी कारण इसका नाम 'शान्ति-निकेतन' रक्खा गया। धीरे-धीरे वहाँ कुछ विद्यार्थियों के अध्यापन का भी प्रबन्ध हो गया और महर्षि ने अपने इस शान्ति-निकेतन को सर्व-साधारण जनता के हाथ में दे दिया। रवीन्द्र बाबू भी इस संस्था में रहने लगे और लगभग २५ वर्ष पहले अपने पूज्य पिता की सम्मति से वहाँ पर एक ब्रह्मविद्यालय स्थापित किया, जिसका आदर्श प्राचीनकाल के "गुरुकुल" की तरह रक्खा। तब से यह "शान्ति-निकेतन" का विद्या- य बराबर उन्नति ही करता चला जाता है। वहाँ विद्यार्थियों को धार्मिक था "ऐच्छिक" शिक्षा दी जाती है—अर्थात् जिस विद्यार्थी की जिस विद्या या कला में स्वाभाविक रुचि देखी जाती है उसको वही विद्या या ला सिखाई जाती है। प्राचीनकाल के ऋषियों, मुनियों का सा श्रम है।

अब तो यह "शान्ति-निकेतन" "विश्व-भारती" के रूप में परि- णत हो गया है अर्थात् यहाँ पर केवल भारतवर्ष के ही नहीं बल्कि इंगलैंड, मेरिका, जर्मनी, इटली इत्यादि देशों के बड़े-बड़े विद्वान्, अध्यापन का कार्य कर रहे हैं, और पश्चिमी देशों के कुछ विद्यार्थी भी आने लगे हैं। सब को भारतीय सभ्यता के अनुसार इस आश्रम में जीवन व्यतीत करना पड़ता है। कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर स्वयं विद्यार्थियों को शिक्षा देते हैं, और साथ ही साथ अध्यापकों को भी अध्यात्मविद्या, विश्वप्रेम और भगव- द्भक्ति के पाठ पढ़ाते रहते हैं। शिक्षा के विषय में विद्यार्थियों पर किसी प्रकार का बोझ अथवा दबाव नहीं है, किन्तु स्वाभाविक उमंग और प्रेम का भाव सब आश्रम निवासियों में दिखाई देते हैं। पूर्णिमा और अमावास्या को साहित्य-सम्मेलन और संगीत-सम्मेलन करके लड़कों का मन प्रफुल्लित रखने का भी प्रबन्ध किया गया है। सब लोग सम्मेलन में नई-नई कविताएँ लिख-

कर लाते हैं, नई-नई कहानियाँ सुनाते हैं और चित्र भी तैय्यार करते हैं। बड़े-बड़े युरोपीय विद्वान् उनके साथ वीणा, इसराज इत्यादि बजा कर आनंदित होते हैं। जीवन सबका सादा है। यहाँ मेज़, कुर्सी, बेंच की बैठक नहीं है बल्कि सब अपने आसनों पर बैठते हैं। शिक्षा खुले मैदान में वृक्षों के नीचे होती है। मौसम देखकर इमारतों में भी श्रेणियाँ लगती हैं। भजन, प्रार्थना, परमात्मा का ध्यान, सब आश्रम निवासी करते हैं।

शान्ति-निकेतन के इस "विश्व-भारती" ब्राह्म-महा-विद्यालय में अब कई नई-नई इमारतें बन गई हैं जिनमें बिजली की रोशनी होने लगी है। एक छापाखाना है जिसमें कवीन्द्र के तथा अन्य विद्वानों के ग्रन्थ-रत्न प्रकाशित हुआ करते हैं। एक बृहद् पुस्तकालय है जिसमें सब देश और विदेशी मुख्य-मुख्य भाषाओं के महत्वपूर्ण ग्रन्थों का सुंदर संग्रह किया गया है। यहाँ एक कला-भवन भी है जिसमें नाना प्रकार के शिल्प और कला-कौशल की अद्भुत वस्तुएँ तथा चित्रादि प्रदर्शित किये गये हैं। सारांश यह है कि रवीन्द्र बाबू ने इस विद्यालय को सब प्रकार से संसार के लिए आदर्श बना रक्खा है। शान्ति-निकेतन का आदर्श निम्न-लिखित वाक्यों से, जो उसके फाटक पर बंगला भाषा में लिखे हैं भली भाँति प्रकट हो जाता है—

"प्राणीमात्र की हिंसा नहीं करनी चाहिए। किसी के धार्मिक विश्वास पर आघात नहीं करना चाहिए। केवल एक परम पितामह की उपासना करनी चाहिए। ऐसे उपदेश करने चाहिए जो सृजनकर्ता और पालनकर्ता की प्रतिष्ठा, भक्ति और उसके आदेशों के अनुकूल हों—उन उपदेशों के द्वारा सदाचार का प्रचार हो, और संसार में भ्रातृभाव का सचार हो।"

## अभ्यास

१. 'परिस्थितियाँ ही कवि को बनाती हैं—रवींद्रजी की जीवनी के आधार पर उपर्युक्त कथन का समर्थन करो।

२. (अ) "आजकल कविता के·····कौड़ी की होती है" (पृ० १९६)। (आ) भारतीय सभ्यता और··· कल्याण हो सकता है" (पृ० ८८) इन पर अपना विचार प्रगट करो।

३. व्याख्या करो—"मृत्यु क्या चीज़ है·····नहीं होता? (पृ० ८६)।

४. कवि रवींद्र की साहित्यिक सेवा पर ३० पंक्तियों का एक लेख लिखो।

५. शांतिनिकेतन की स्थापना कब और क्यों हुई? वहाँ की व्यवस्था का वर्णन करो।

६. भेद बताकर वाक्यों में प्रयोग करो:—डाक–डाका, कल–खल, राज–राज़, रोज़–रोजा, गुल–घुल, प्रबंध–निबंध, क्षिति–क्षति, कुल–खुल, अपेक्षा–उपेक्षा, पुरुष–पुरुष, सुत–सूत।

७. 'क्या', 'और' इन शब्दों को सर्वनाम, विशेषण और समुच्चय-बोधक के रूप में छोटे-छोटे वाक्यों में प्रयुक्त कर दिखाओ।*

८. सूचना के अनुसार इन वाक्यों को बदलो—(क) कल के नाटक में मैंने राजा का पात्र लिया था (क्रिया का संभाव्य भविष्यत् रूप लिखो)।

---

* व्याकरण प्रदीप–रामदेव (हिंदी भवन, जालंधर) के दूसरे खंड का १२ वाँ अध्याय देखो।

(ख) मैं एक बैल गाड़ी खरीदूँगा (चाहिए उपयोग करो)।

(ग) बाघ ने भेड़ों को खा लिया (वाच्य बदलो)।

(घ) वह आदमी बड़ा **विद्वान्** है (रेखांकित का स्त्रीलिंग रूप लिखो)।

(ङ) मेले में मेरे चार घोड़े **बिक गये** (क्रिया का सकर्मक रूप लिखो)।

(च) धूप के कड़ी होने के कारण वे पेड़ की छाया में ठहर गये (दो वाक्य बनाओ)।

(छ) कल तुम ने मुझसे एक घड़ी ली (विधिरूप में लिखो)।

(ज) **आधे-आधे खिले** फूलों को मत तोड़ो (एक पद लिखो)।

(झ) * सुस्ती से काम मत करो (विधानार्थक रूप में लिखो)।

(ञ) गोपाल को एक पुस्तक पुरस्कार के रूप में दी गयी ('पुस्तक' के स्थान पर 'क्या' का प्रयोग करो)।

(ट) भारत का कोई नगर कलकत्ते से बड़ा नहीं है। ('नहीं' निकालकर लिखो। अर्थ में परिवर्तन न हो)।

(ठ) वाक्यों में **शिथिलता** न आनी चाहिए (विशेषण रूप लिखो)।

(ड) **जब तक जीवन है तब तक** वह ब्रह्मचारी रहना चाहता है (एक शब्द लिखो)।

(ढ) जिस के पास धन न हो उसका कहीं आदर नहीं होता (एक सामान्य वाक्य बनाओ)।

(ण) **ग्रामवासी नागरिकों** से अधिक स्वस्थ होते हैं (रेखांकित शब्दों के स्थानों में एक एक आश्रित वाक्य (clause) लिखो।

* सुस्ती का उल्टा चुस्ती है। इसीका प्रयोग करो।